प्रिय कुसुमचरण !
लो, यह प्रेमोपहार
भेंट है।
—लेखक।

प्रस्तावना ।

मनुष्य-प्रकृति नूतनता-प्रेमी है। नई बातको सुनने और जाननेका कौतूहल आबालवृद्ध—वनिता सबहीको है। बालकोंकी बुद्धिका जहां विकास हुआ कि उन्हें मानव कहानीकी मौलिकता अनुभवोंको जाननेकी अभिलाषा हुई! 'मां' और आवश्यक्ता। या 'दादी' को घेरकर वह तरह-तरहकी कहानियोंको सुननेका तक़ाज़ा करने लगते हैं। इन कहानियोंमें उन्हें नई २ बातें जाननेको मिलतीं हैं; जो उनको अपना काल्पनिक जगत रचनेमें और ज्ञानको परिपक्व बनानेमें कार्यकारी होती हैं। इस तरह पर कहानीका स्थान मानव साहित्यमें प्राकृत आवश्यक और उपयोगी है। तथापि धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रमें कहानियां अपना विशेष मूल्य रखती हैं। मालूम होता है, पहले पहल सदुपदेशको जनसाधारण तक पहुंचानेके लिये उनका उपयोग हुआ था। किन्तु धीरे २ वह मनोरंजन, इतिहास और हंसीके लिये भी व्यवहृत होने लगीं। आजकल जनश्रुतियां और कथायें इतिहासके लिये बड़े मूल्यकी समझीं जातीं हैं। जनसाधारण कहानियोंको बड़े प्रेमसे पढ़ने लगा है।

यह है भी ठीक; क्योंकि हम कह चुके हैं कि मनुष्य-प्रकृतिके यह अनुकूल है। यही कारण है कि संसारके प्राचीनतम ग्रन्थोंमें

कहानी साहित्यकी प्राचीनता।

कहानियोंका सद्भाव मिलता है। वेद, उपनिषद आदि ब्राह्मण-साहित्य ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र कहानियाँ बिखरी हुई मिलती हैं। ऋग्वेदमें अपालाकी कथा यदि पढ़नेको मिलती है तो उपनिषद्में जाबाल सत्यकामका वर्णन मिलता है। इसतरह आजसे लगभग चार हजार वर्ष पहले कहानी मानव समाजमें प्रचलित प्रमाणित होती है। किन्तु जैन मान्यता, कहानीके प्रचार विषयक प्राचीनताको और भी गहन ठहराती है। जैनोंका कहना है कि इस युगकी आदिमें जब श्रीऋषभदेवजीने जैनधर्मका उपदेश दिया और तद्विषयक साहित्यका निर्माण हुआ तो उसमें 'कहानी' 'कथा' अथवा 'पुराण' को भी मुख्य स्थान मिला। जैनोंमें यह साहित्य 'प्रथमानुयोग' के नामसे परिचित है और यह विशेषतः सत्य घटनाओंके आधारपर रचा हुआ समझा जाता है। जैनोंके इन ऋषभदेवका उल्लेख स्वयं ऋग्वेदमें है[1] और भागवतमें इनको बाइस अवतारोंमेंसे आठवां बताया गया है[2]। अतएव ऋग्वेदकी कथाओंसे प्राचीन जैनोंका प्रथमानुयोग शास्त्र प्रमाणित होता है। सिंधप्रांतके मोहन जोडेरो नामक स्थानसे मिले हुये पुरातत्वसे भी इस मान्यताका समर्थन होता है। क्योंकि वहां एक मुद्रा ऐसी मिली है जिसपर जिन मूर्ति अंकित है और यह ई० पूर्व ३-४ हजार वर्षकी मानी गई है।[3] बस भगवान् ऋषभदेवका समय कमसेकम इसी कालके लगभग अथवा इससे बहुत पहले

१-ऋग्वेद ३०-३ । २-भागवत ५-४, ५, ६ । ३-प्रीहिस्टॉरिक सिविलीजेशन ऑव इन्डस वैली-जैनमित्र वर्ष ३१ पृ० ३४ ।

जैसे, जैनी मानते हैं, ठहराता हैं। और तब कहानी भी उस कालमें विकसित और प्रचलित मिलती है। अस्तु।

यह तो हुई कहानीके प्रारंभिक कालकी बात, उस समयकी जिसका पूरा२ पता हमें नहीं है और जिसकालकी साहित्य रचनायें आज पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु जब

कहानी और उसका महत्व।

भारतीय साहित्यमें हम ऐतिहासिक कालकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें संस्कृत, प्राकृत और पाली साहित्यमें ही पहले-पहले कहानीका अस्तित्व मिलता है। 'महाभारत' की छोटी२ आख्यायिकाएं और हिन्दू पुराणोंकी कथायें संस्कृतकी रचनायें हैं। किन्तु उपरांतके 'कथा सरितसागर' हितोपदेश और 'बृहत कथा मंजरी' आदि इस विषयके अच्छे ग्रंथ हैं। जैनोंमें आठवीं शताब्दिका 'बृहद कथाकोष' अपने ढंगका अच्छा है। वैसे श्वेतांबरोंके 'नंदि-सूत्र' 'उपासक दशासूत्र' आदि अंग ग्रन्थोंमें भी यह साहित्य भरा पड़ा है। परन्तु वह अर्द्ध मागधी प्राकृत भाषामें है। संस्कृत भाषामें श्वेतांबराचार्य सिद्धर्षिका 'उपमितिभवप्रपंच' कथा बिलकुल अनूठा ग्रन्थ है। कलाकी दृष्टिसे उसका स्थान बहुत ऊँचा है। अंग्रेजी साहित्यका 'Pilgrim's Progress' नामक ग्रन्थ ही उसकी समानता कर सक्ता है। पाली भाषामें बौद्धोंकी जातक कथायें मुख्य हैं। कहा जाता है, लोकके वर्तमान कहानी साहित्यकी जड़ उसीमें छिपी हुई है[1]। किन्तु प्रो० हर्टल सा० जैनोंके 'पंचाख्यान' को यह महत्व देते हैं[2]। गर्ज यह कि भारतीय कहानी साहित्य ही

१-मधुकरीकी भूमिका देखो। २-हर्टल सा०का 'जैन पंचतन्त्र' देखो।

इस विषयका आदि साहित्य है और उसमें भी जैनोंका साहित्य विशेष स्थान रखता है, यह विद्वानोंका मत है।

किन्तु हमारे यहां तकके कथनसे यह प्रगट नहीं होता कि हिन्दीमें कहानी साहित्यको कब स्थान मिला था? इसके लिये हमें हिन्दीकी जन्म-तिथिको टटोलना चाहिये।

हिन्दी साहित्यमें कहानीका स्थान।

विद्वानोंका मत है कि हिन्दीकी उत्पत्ति सं० ७०० के लगभग हुई है और इसका विकाश अपभ्रंश प्राकृतसे हुआ है। यह बात है भी ठीक; क्योंकि हालमें जो दिगम्बर जैन भण्डारोंसे इस भाषाका साहित्य उपलब्ध हुआ है, उससे इस मान्यताका पूरा समर्थन होता है। इस साहित्यमें वैसे तो आदिपुराण, भविष्यदत्त कथा, यशोधर चरित, हरिवंशपुराण, पद्मचरित, सुदर्शनचरित, करकण्डुचरित, पार्श्वपुराण प्रभृति अनेक ग्रन्थ गिनाये जासक्के हैं और यह सब सातवीं शताब्दिसे बारहवीं शताब्दि तककी रचनायें हैं; किन्तु छोटी छोटी कथाओं अथवा कहानियोंका संग्रह इन्हें नहीं कहा जा सक्ता। हाँ, यह बात जरूर है कि इनमें भी ऐसी कथायें बाहुल्यतासे मिलेंगी। इसलिए अपभ्रंश प्राकृत साहित्यमें हम समझते हैं, श्री श्रीचन्द्रमुनिका 'कथाकोष' ही इस विषयका प्रथम ग्रन्थ है। मुनि श्रीचन्द्रने इसे अन्हिलपुरके

---

१. Jaina narrative literature is amongst the most precious sourse, not only of folklore in the most precious comprehensive sense of the word, but also of the history of Indian Civilisation.

—Dr. Hoernle.

२. मिश्रबन्धु विनोद व नागरी प्र० प० भाग २ पृ० १७२–१७३

राजा मूलराजके गोष्टिक (कौन्सिलर) कृष्णके लिये सन् ९४१–९९६ के लगभग रचा था। इसे उन्होंने ५३ संधियोंमें पूर्ण किया था और इसमें इतनी ही कथायें हैं, जो नैतिक और धार्मिक शिक्षाको लक्ष्य करके लिखी गई हैं। भाषा इतनी सरल है कि हम उसे प्राचीन हिन्दी कहनेको वाध्य हैं। नमूनेके तौरपर देखिये:—

'संसारु असारु सव्वु अथिरु, पिय-पुत्त-मित्त माया तिमिरु।
संपय पुणु संपहँ अणुहरइ, खणि दीसइ खणि पुणु ऊसरइ॥'

इत्यादि।

इस दशामें यह कथाकोष हिन्दी कहानी साहित्यका पूर्वगामी मार्ग-चिह्न कहा जा सक्ता है। यद्यपि इससे पृथक अनुवाद रूपमें वैतालपचीसी, सिंहासनबत्तीसी, शुकबहत्तरी आदि हिन्दीकी कहानियां गिनाई जासक्ती हैं, परन्तु यह हिन्दीकी निजी वस्तु नहीं है। इसलिये 'रानी केतकी'की कहानीसे ही हिन्दीमें कहानीका सच्चा विकाश माना जाता है। यह कहानी गद्यमें सन् १८०३ ई०में एक मुसलमान लेखक इंशा-अल्लाहखां द्वारा लिखी गई थी। इसे पढ़कर हंसी आती है और यह एक खिलवाड़ मालूम होता है, ऐसा पं० विनोदशङ्कर व्यासजीका मत है, किन्तु उक्त पंडितजीके शब्दोंमें ही, केवल इस एक कहानीसे सवासौ वर्ष पहलेसे लेकर आजतककी हिंदी कहानियों, और साथ२ ही हिन्दी गद्यका विकाश कैसे हुआ, यह हम भली भांति जान लेते हैं [२]। आजकलकी कहानियां साहित्यक–कलाके अनूठे रत्न हैं; जिनके रत्नकार

१. जर्नल ऑव दी अलाहाबाद यूनीवर्सिटी पृ० १७१। २. 'मधुकरीकी भूमिका'।

श्री प्रेमचंदजी, उग्रजी, सुदर्शनजी प्रभृति विद्वान् हैं। और रत्नोंको परिष्कृत रूपमें प्रकट करानेका श्रेय सर्व प्रथम प्रयागकी 'सरस्वती' पत्रिकाको ही है। अस्तु;

हिन्दी साहित्यकी तरह जैनोंके हिन्दी साहित्यमें कहानियोंके लिये मुनि श्री चंद्रका उक्त कथाकोष उल्लेखनीय है; परन्तु इसके अतिरिक्त तेरहवीं शताब्दिका 'जम्बूस्वामी रास'–१९ वीं शताब्दिका "गौतम रास" और "धर्मदत्तचरित्र"; १६ वींके "ललितांग-चरित्र"; "यशोधरचरित्र" "रामसीता चरित्र" और "कृपणचरित्र" उल्लेखनीय हैं। इसमें 'कृपणचरित्र' एक छोटीसी बड़ी मार्मिक आख्यायिका है। इसमें एक कंजूस धनीका चरित्र चित्रित किया गया है। घेल्हके बेटे ठकुरसी नामके कविने इसे काव्य रूपमें रचा है। इसका प्रारंभ इस तरहपर हैः–

हिन्दी जैन साहित्यमें कहानी।

कृपणु एकु परसिद्धु नयरि निवसंतु निलक्खणु।
कही करम संजोग तासु घरि, नारि विचक्खणु॥
देखि दुहूकी जोड़, सयलु जग रहिउ तमासै।
याहि पुरिषकै याहि, दई किय दे हम भासै॥
वह रह्यो रीति चाहै भली, दाण पुन्न गुण सील सति।
यह दे न खाण खरचण किवै, दुवै करहिं दिणि कलह अति॥
इत्यादि।"

विचारी धर्मात्मा पत्नीको इसके आगे मन मसोस कर रह जाना पड़ता और हठात् मुंह भी खोलना पड़ता। एक दिन कृपु-

णकी स्त्रीने संघके साथ तीर्थयात्रा कर आनेके लिये उससे कहा। सेठजी यह सुनकर बड़े खफा हुये। दोनोंमें वाद छिड़ा—सेठानीने धनकी सफलता दान, भोग आदिमें बतलाई और सेठने इसका विरोध किया। फलतः सेठजी रूठकर घरसे चल दिये। मार्गमें उनका एक मित्र मिला। भाग्यसे वह भी कंजूस था। उसने कृपणकी गाथा सुनकर उसे सलाह दी:—

"ता कृपण कहै रे कृपण सुणि, मीत न कर मनमाहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी, ज्यौंको दिण तूं होइ सुखु॥"

कृपणने यही किया, स्त्रीसे कहा, तेरे माईके बेटा हुआ है और उसने तेरे बुलानेके लिये आदमी भेजा है। वह बेचारी चली गई और यात्रीसंघ भी चला गया। जब संघ लौटकर आया और उसमें सेठने देखा, कई लोग मालामाल होगये हैं तो उसे बड़ा दुःख हुआ। वह रात दिन इसी दुःखमें दुःखी रहने लगा और आखिर मरणतुल्य होगया। लोगोंने उससे दान धर्म करनेकी बात कही; परंतु उसने एक न मानी। उल्टे लक्ष्मीसे साथ चलनेके लिये प्रार्थना की; किन्तु लक्ष्मीने कहा कि 'मेरे साथ चलनेके जो कई दानादि उपाय थे, वे तूने किये नहीं; इसलिये मैं तेरे साथ नहीं चल सक्ती।' यह सुनकर कृपणके प्राण-पखेरू उड़कर नरकमें तरह २ की यातनाएं भुगतनेको पहुंच गये और उसके चिरसंचित धनको कुटुम्बीजन मनमाने ढंगसे भोगने लगे। यही इस चरित्रका सार है।

उपरोल्लिखित कथा ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी कई एक चारित्र ग्रंथो और कथाकोषोंका पता चलता है; परंतु वे सब ही

पद्यमय हैं । इसलिये हिन्दी जैन साहित्यमें
हिन्दी जैन साहित्यमें इन्हींसे कहानीका खास विकास हुआ नहीं
मौलिक कहानियां । कहा जासक्ता । इस विषयका, हमें सबसे
पहले, सं० १७७७ का रचा हुआ 'पुण्या-
श्रव कथाकोष' मिलता है । इसे संस्कृतके आधारसे पं० दौलत-रामजीने रचा था । इसके बाद 'आराधना कथाकोष' आदि ग्रन्थोंके स्वतंत्र अनुवाद भी प्रकट हुये हैं; परंतु इनसे हिन्दी जैन साहित्यमें मौलिक कहानीका श्रीगणेश हुआ नहीं कहा जासक्ता और सच पूछिये तो आजसे बीस-पच्चीस वर्ष पहले तक हिन्दी जैन साहित्यको यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं हुआ ! इस ओर सबसे पहले हमें बाबू जैनेन्द्रकिशोरकी 'मनोरमा' दृष्टिगत पड़ती है; परंतु वह एक उपन्यास है और इसी तरह स्व० पंडित गोपालदासजी बरैयाका 'सुशीला' उपन्यास भी इसी कोटिमें आता है । यह मौलिक रचनायें अवश्य हैं; परंतु इन्हें कहानी साहित्यमें नहीं गिना जासक्ता । यदि हां, बरैयाजीने स्व-संपादित "जैन-मित्र" में छोटी छोटी कहानियां लिखीं हों तो हमें उन्हें ही हिन्दी जैन साहित्यमें सर्व प्रथम मौलिक-कहानी-लेखक होनेका श्रेय देना होगा । किन्तु स्पष्ट रूपमें हमें लाला मुंशीलालजी एम० ए० का नाम इस दिशामें दृष्टिगत पड़ता है । आपकी 'कहानियोंकी पुस्तक' इस विषयकी पहली पुस्तक कही जासक्ती है; यद्यपि इसी समयके लगभग हमें पं० बुद्धिलालजी कृत 'मोक्ष-मार्गकी सच्ची कहानियां' भी नजर आती हैं । अतः हिन्दी जैन साहित्यमें मौलिक कहानियोंका आरंभ इन्हीं पुस्तकोंसे हुआ कहा

जासक्ता है। परन्तु कलाकी दृष्टिसे कहानियां रचनेका श्रीगणेश तो जैनियोंमें अभी ताजा ही ताजा है और इस सम्बन्धमें हमें श्रीयुत जैनेन्द्रकुमारजी, भाई ऋषभचरणजी, पं० दरबारीलालजी, पं० मूलचंद्रजी वत्सल, बाबू ताराचन्दजी रपरिया और मि० रूपकिशोरजीके नाम याद पड़ते हैं। इन विद्वानोंने हिन्दी साहित्यमें अनेक मौलिक कहानियां रच दीं हैं; और साथ ही जैनधर्म तथा जैन समाजको लक्ष्य करके भी इन्होंने कितनी ही कहानियां लिखी हैं। इन साहित्य-सेवियोंके अध्यवसायसे हमें विश्वास है, हिन्दीका जैन साहित्य भी उच्च कोटिके कहानी साहित्यसे रिक्त नहीं रहेगा। अस्तु,

हिन्दी जैन साहित्यमें कहानी-साहित्यके इस बाल्यकालकी अवस्थामें यदि हमने यह अनधिकार प्रयास किया है, तो वह क्षम्य है। हम जानते हैं कि साहित्यकलाकी

हमारा उद्देश्य।

दृष्टिसे हमारी कहानियां ऊंचे दर्जेकी नहीं कही जासक्ती और इसलिये विद्वत्समाजमें उनका मूल्य विशेष न आंका जाय, तो इसका हमें खेद नहीं है; क्योंकि पहले तो यह हमारा प्रथम बाल-प्रयास है और दूसरे हमारा उद्देश्य, इसमें साहित्य-पूर्तिके अतिरिक्त कुछ अधिक है। साधारणतया आज लोगोंमें यह धारणा होगई है कि जैनधर्मकी शिक्षा मनुष्योंको भीरु बनानेवाली है, उसका अहिंसातत्व अव्यवहार्य है और जैनोंके कारण ही भारतका पतन हुआ है। जैन विद्वानोंकी ओरसे इस मिथ्या धारणाको गलत साबित करनेका प्रयत्न हुआ है; किन्तु इस मिथ्या धारणाको बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट करनेके लिये जैन वीरोंके चरित्र प्रगट करके अहिंसातत्वकी व्यव-

ऐतिहासिकता स्पष्ट कर देना ही श्रेष्ठ है। बस इसी उद्देश्यसे हमने यह कहानियां लिखी हैं। इनके पढ़नेसे पाठकोंको जैन अहिंसाकी सार्थकता और जैनोंके वीर पुरुषोंका परिचय विदित होगा और इसी बातमें इस रचनाका महत्व गर्भित है।

यह बात जरूर है कि हमने इन कहानियोंके रचनेमें अपनी कल्पनाशक्तिसे काम लिया है; परंतु इसके माने यह नहीं हैं कि
यह कहानियां कपोल-कल्पित हैं। प्रत्युत
प्रस्तुत कहानियोंका सच्ची ऐतिहासिक घटनाको लेकर, उसे
आधार। हमने पल्लवित कर दिया है और यह काम
हमारा निजी है। अतएव आधारके सत्य
होनेके कारण इन कहानियोंमें किसी प्रकारकी शंका करना व्यर्थ है। तो भी, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये हम प्रत्येक कहानीका ऐतिहासिक आधार उपस्थित करके उनकी सत्यता स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं:—

(१) पहले ही तीर्थंकर अरिष्टनेमिकी कहानी है और इसमें जरासिन्धुके साथ युद्ध करने एवं शेष बातोंका जो उल्लेख है, उसका आधार श्री जिनसेनाचार्य प्रणीत "हरिवंश पुराण" है। (देखो सर्ग ५१)

(२) दूसरे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यका वर्णन है। इसका आधार जैन ग्रंथ और शिलालेख तो हैं ही किन्तु इसके साथ ही यूनानी लेखकोंके वर्णन और आधुनिक इतिहास ग्रंथ भी हैं। तीसरी या चौथी शताब्दिके जैन ग्रंथ "तिरलोयपण्णत्ति" से सम्राट् चन्द्रगुप्त

मौर्यका जैन मुनि होना स्पष्ट है[1] और श्री 'भद्रबाहु चरित्र'—'राजावलीकथे'[2] और 'परिशिष्ट पर्व' में उनका चरित्र एक जैन सम्राट्के रूपमें अंकित है।[2] इन प्रमाणोंको देखते हुये उनके जैन होनेमें शंका करना व्यर्थ है। इसके साथ ही यूनानी लेखकोंके वर्णनसे चन्द्रगुप्तका हेलेनके साथ प्रेमालाप करना और उनका परस्पर विवाह होजाना स्पष्ट है।[3] अतः इस विषयमें शंका करनेको स्थान शेष नहीं है।

(३) इसके बाद 'सम्राट् ऐल खारवेल' का कथानक है और यह खण्डगिरि उदयगिरिके हाथीगुफावाले शिलालेखके आधारसे लिखा गया है। राजकुमारी सिंहपथाका युद्धमें खारवेलको साहाय्य पहुंचाना एक उड़िया काव्यसे स्पष्ट है[4] और शेष बातें उक्त शिलालेखमें कही गई हैं।[5] कौशलेश ऐलेयके वंशज होनेके कारण यह सम्राट् विरुद रूपमें अपने नामके साथ 'ऐल' शब्दको प्रयुक्त करते थे। जैन 'हरिवंश पुराण' से उनका ऐलेय-वंशज होना प्रमाणित है।[6]

---

१. 'मउडधरेसु चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य।'
—जैनहितैषी भा० १३ पृ० ५३१

२. जैन शिलालेख संग्रह (मा० ग्रं०) भूमिका, पृ० ५४—७०.

३. ऐंश्यिन इन्डिका और अर्ली हिस्ट्री ऑव इन्डिया, पृ० १२५.

४. धूसी चरित्र—प्राचीन कलिङ्ग नामक पुस्तक देखो.

५. जर्नल ऑव दी विहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सो०, भा० १३ पृ० २२१—२४६

६. हरिवंशपुराण, १७।१—३९.

(४) श्री चामुण्डरायजीके चारित्र विषयक घटनायें श्रवणबेलगोलेके शिलालेखों और संस्कृत एवं कनड़ी साहित्यसे स्पष्ट हैं।

(देखो 'वीर' का 'चामुण्डरायाङ्क' वर्ष ७ अंक १)

(५) गङ्ग नृपति मारसिंहने गङ्गवाड़ि (मैसूर) में सन् ९६१ से ९७४ तक राज्य किया था। उन्होंने राष्ट्रकूटवंशी राजा इन्द्रके लिये लड़कर राजसिंहासन दिलवाया था; यह घटना इतिहास सिद्ध है। (जैन शिलालेख संग्रह, भूमिका, पृ० ७२–७७) तथापि मारसिंहने अन्तमें जैनाचार्य अजितसेनके सन्निकट समाधिमरण किया था, यह बात भी इतिहाससे स्पष्ट है। (पूर्व पृ० ७२)

(६) होयसाल राजा विष्णुवर्द्धनके सेनापति गङ्गराज थे! उन्होंने राजाके लिये लडाइयां लड़कर जैनधर्मकी प्रभावना की थी और विष्णुवर्द्धन शैव होनेपर भी जैनधर्म प्रेमी रहे थे, यह बातें श्रवणबेलगोलाके शिलालेखोंसे स्पष्ट है। (पूर्वप्रमाण पृ० ८८-९३)

(७) सेनापति हुल्लने राजा नरसिंहदेवके साथ जैनधर्म प्रभावनाके अनेक कार्य किये थे। उन्हींमेंसे एकका उल्लेख हमने किया है। (मद्रास और मैसूरके प्राचीन जैन स्मारक, पृ० २९२)

(८) वीरांगना सावियब्बेके चरित्रको बतानेवाला कनड़ी भाषाका एक सचित्र वीरगल (शिलालेख) सन् ९९०की श्रवणबेल-गोलमें मौजूद है। (जैन शिलालेख संग्रह पृ० १४४–१४९)

(९) और सर्व अंतिम सती रानीका वर्णन गौंडे जिलेके

प्राचीन इतिहासके आधारपर किया गया है। (संयुक्तप्रांतके प्राचीन जैन स्मारक पृ० ६९—६६)

सारांशतः यह स्पष्ट है कि जिन घटनाओंको इस पुस्तकमें पल्लवित किया गया है, वह हमारा कोरा ख्याली पुलाव नहीं है। बल्कि वह ऐतिहासिक-वार्ता है और इसलिये हमारे उद्देश्यको सिद्ध करनेमें सहायक है।

उपसंहार।

यदि पाठकोंका इनसे मनोरंजन हुआ और उन्होंने समुचित शिक्षा-लाभ किया, तो हम समझेंगे, हमारा तुच्छ प्रयास सफल हुआ। इस अवस्थामें हम इतिहास और शिलालेखोंके लेखकोंके साथ प्रकाशक महाशयका आभार स्वीकार करते हैं। यदि यह तुच्छ कृति अपनाई गई तो ऐसी ही अन्य पुस्तकें प्रगट करनेका उद्योग किया जायगा। किमधिकम्; इतिशम्।

अलीगंज (एटा)
वसन्तपञ्चमी
सन् १९३० ई०

विनीत—
कामताप्रसाद जैन।

रत्न–मालिका ।

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस–सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

(१)

तीर्थंकर अरिष्ट-नेमि ।

महा प्रचण्ड युद्ध था। कुरुक्षेत्रका कोना कोना वीरोंके जयघोषसे निनादित हो गया। वहाँकी तिल-तिल जमीनको वीरोंने अपने तनसे पाट दिया—शोणितकी सरिता बह चली ! पर आर्यवीर बढ़ते ही गये ! एक ओर जरासिंधु और कौरवोंका दल था और दूसरी ओर हरिवंशी यादव और उनके सहायक पाण्डवादिकी अक्षौहिणी बढ़ती चली जा रही थी। देखते देखते यादव-सेनामें कोलाहल मच गया— "चक्र व्यूह" "चक्र व्यूह"की आवाजसे आकाश गूंज उठा !

श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि और अर्जुनको परिस्थितिके समझनेमें देर न लगी—उनके परामर्शसे राजा वसुदेवने चक्रव्यूहको तहस-नहस करनेके लिये गरुड़ व्यूहकी रचना कर डाली ! पचास लाख रण-पंडित यादवकुमार व्यूहके अग्रभागमें रक्खे और वह सब लोग अगाड़ी बढ़-बढ़ कर जरासिंधुकी सेनासे बाजी लेने लगे। फिर एक दफे योद्धाओंकी हुंकारोंसे दिशायें गूंज उठीं-रथसे रथ भिड़

१

गया, घोड़ोंसे घोड़े जा अड़े और प्यादोंसे प्यादे जूझने लगे ! पैने भाले चमकने लगे, तेज तलवारें घूमने लगीं और तीर तरकससे छूट कर हवासे बातें करने लगे।

श्रीकृष्ण कुवेरके लाये हुये गरुड़-रथमें सवार होकर सेनाके हौसले बढ़ाने लगे। भगवान अरिष्टनेमिके लिये इन्द्रने अपना शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित रथ भेजा और उनका सारथी मातलि भी साथमें आया। अरिष्टनेमि उस पर सवार होकर चक्र-व्यूहको भेदनेके लिये अगाड़ी बढ़ गये ! असंख्य-सेना-समूहमें उनका रथ हाथीके चिन्हसे अङ्कित अपनी ध्वजाको उड़ाता हुआ अलग दिखाई पड़ रहा था। भगवान अरिष्टनेमिके रण-कौशलने जरासिंधुकी सेनामें भयके भयानक बादल लाखड़े कर दिये और ऐसा मालूम पड़ने लगा कि यादव सेना इन्द्र-सैन्यकी तरह वृत्र-दल पर टूट पड़ी है !

चक्र-व्यूहको टूटते देर न लगी ! यादव-सेनापति अनावृष्णिने उसका मध्य भाग भेद डाला; भगवान अरिष्टनेमिने दक्षिण भाग तोड़ डाला और उसके पश्चिमोत्तर द्वारको अर्जुनने उखाड़ दिया ! चक्रव्यूह टूट गया और उसके टूटते ही जरासिंधुकी सेनाके छक्के छूट गये ! यादव-शिविरमें जय-घोषका निनाद हुआ !

जरासिंधुके लिये यह असह्य था। वह श्रीकृष्ण और भगवान अरिष्टनेमिके सम्मुख आ डटा। अपने चक्रपर उसे बड़ा अभिमान था ! श्रीकृष्णपर उसने वह चलाया भी। लोगोंके दिल थर्रा गये, पर भगवान अरिष्टनेमि मुस्कराते रहे। चक्रने उनका कुछ भी न बिगाड़ा। श्रीकृष्णके हाथमें वह सुगमतासे पहुँच गया। इधर जरासिंधुके पैर तलेसे पृथ्वी खिसक गई ! दूसरे क्षण उसीके चक्रने

उसका वक्षस्थल भेद दिया! जरासिंधु भारी दिवालकी तरह जमीनपर लोटने लगा। यादव सेना विजयोल्लासमें मत्त द्वारिकाको लौट आई।

इन्द्रका सारथि मातलि श्री अरिष्टनेमिसे पूंछ कर अपने स्वामीके पास चला गया। शत्रुकी विजयमें यादवगण आनन्दरेलियां करने लगे। किन्तु बहुतेरे विवेकी सज्जन संसारकी विचित्रताको देख कर आत्मस्वातंत्र्य लाभ करनेके लिये साधु हो वनको चले गये!

गुरमीके मारे लोग व्याकुल हो रहे थे-पृथ्वी सूर्यकी तेजीसे जल रही थी, पर तो भी गिरिनार पर्वत पर शीतल झरनोंकी गोदमें वह श्रीकृष्ण आदिको बड़ी प्यारी लगने लगी।

भगवान अरिष्टनेमि यद्यपि स्वभावसे ही उदासीन वृत्तिको अपनाये हुये थे; परंतु तो भी वह अपनी भावियोंका कहना न टाल सके। एक रोज वे सब उनको घेर कर सुदर्शन झील पर ले गईं और उनके साथ मनमाने ढंगसे जलक्रीड़ा करने लगी! "उनमें कोई तो तैरने लगी, कोई डुबकी लगाने लगी और कोई कोई आपसमें पिचकारियोंसे एक दूसरीके मुख पर छींटे मारने लगीं।" उन्होंने भगवानको भी अछूता न छोड़ा। इस आनन्द-केलिके बाद भगवान अरिष्टनेमिने अपने गीले कपड़े बदले और नये वस्त्राभूषण पहन लिये। तब उनके पास श्रीकृष्णकी पटरानी जाँबवती खड़ी हुई थी। भगवान उनसे कटाक्ष रूपमें बोले, "भाभी! यह धोती निचोड़तीं लाना।"

नारायणकी पत्नी जाँबवतीको भगवानका यह विनोद-वाक्य च्राट गया। वह भौंहोंमें बल डालती हुई बोली; "वाह लाला,

खूब मजाक करते हो—बड़ा साहस आपका ! बड़े भाईके नाम और कामको भूल गये ! उन जैसे जरा हो लो, तब ऐसी बातें कहना।"

"हां ! यह बात है भाभी !" श्री अरिष्टनेमिने उत्तर दिया, "तो आज ही लो मैं आपकी इस शुभोक्तिको तौल—नाप लूँगा। बड़े भाईके पुरुषार्थको चुनौती दे दूं, तब ही धोती छांट देना। कहो, रही न बात पक्की ?"

जांबवती जलकर आग बबूला होगई। वह अभी मुँह भी न खोल पाई थी कि महाराणी रुक्मिणी आदिने बीचमें ही उसे डाँट दिया। वे बोली—"अरे निर्लज्ज ! ये भगवान तीन लोकके स्वामी तीर्थङ्कर हैं; इन्हें क्यों तू इस प्रकार घृणाकी दृष्टिसे देखती है ?" जाँबवती खिसियानीसी अपने रनवासमें चली गई।

उधर भगवान अरिष्टनेमि सीधे नारायण कृष्णकी आयुध-शालामें जा पहुंचे। वह श्रीकृष्णकी नागशय्या पर चढ़ गये और उनके शङ्खको उठा कर बड़े जोरसे बजा दिया। अचानक इस शंखध्वनिको सुन कर यादवोंको बड़ा अचरज हुआ ! श्रीकृष्ण अपने सखा-सहचरों सहित शस्त्रागारमें पहुंचे और भगवानको नागशैया पर धनुष-बाण चढ़ाये देख कर विस्मयमें डूब गये। कोई भी इस भेदके पर्देको उठानेमें समर्थ न था—सब ही भगवानकी ओर एकटक निहार रहे थे !

इतनेमें ही भीड़मेंसे किसीने कहा, "भगवान नेमिनाथने जाँबवतीको चिढ़ानेके लिये यह काम किया है।" श्रीकृष्णने यह शब्द सुने और उन्होंने बड़े प्रेमसे भगवान् अरिष्टनेमिको अपनी छातीसे लगा लिया !

सब लोग खुशी खुशी अपने अपने घर चले गये। श्रीकृष्ण भी राजमंदिरमें पहुंच गये परंतु भगवानके उक्त कार्यको वे भुला न सके। उनकी प्रियतमा जाँबवतीका गर्व तो इस कार्यसे खर्व हुआ ही था; किन्तु भगवानके अटूट साहस और अतुल बलने उन्हें और भी सशङ्क बना दिया! श्रीकृष्ण कुछ देर सोचते रहे और फिर मुस्कराते हुये बोले, "नेमिनाथका विवाह भोजवंशी राजा उग्रसेनकी राजकुमारी राजमतीसे शीघ्र होगा। सब लोग इस विवाहोत्सवको सानन्द सम्पन्न करो।"

यादवोंने श्रीकृष्णके इस आदेशको बड़े हर्षभावसे ग्रहण किया और वे लोग भगवानके विवाहकी खुशीमें विविध रंगरेलियां मनानेमें लग गये।

गिरिनारकी कंटीली और पथरीली पगडंडियोंको लांघती हुई, बेचारी राजमती उस ओर बढ़ी चली जारही थी, जहां भगवान अरिष्टनेमि ध्यान लगाये बैठे थे। राजमतीका करुण विलाप गिरिराजकी कठोर शिलाओंसे टकराकर नष्ट होरहा था, मानो वह यही कह रहा था कि "जा, लौट जा, राजुल! नेमिनाथको अपने अंकमें बिठाकर मैंने अपने जैसा ही दृढ़ बना लिया है। तेरा विलाप कुछ काम न आयेगा!" किन्तु राजकुमारीकी ठीक वही दशा थी, जो चकवाके बिछोहमें चकवीकी होती है। गिरिराजकी कटु-उक्ति उसकी सूझमें न आई! अपनी दयार्द्र दशासे वन-जंतुओं तकके दिलोंको हिलाती हुई, वह आखिर भगवान नेमिनाथके पास पहुंच गई और उन्हें तरह२के उलहने देने लगी। पर भगवान टससे मस न हुये।

राजमती तो भी चुप नहीं हुई और अन्ततः उसके इस वाक्यने भगवानके मौनको भङ्ग कर दिया। वह बोली, 'प्रियतम्! आपने क्षुद्र पशुओंके प्राणोंका तो इतना मूल्य समझा, और उनपर अपनी दयाका झरना बहा कर ही शांत न हुये; बल्कि उनके मिससे मुझ निरपराधिनीको बीच मंझधारमें ही छोड़ कर यहां आ जमें; परंतु यह तो बताइये कि उस रोज आपकी दया कहां गई थी जिस रोज जरासिंधुके सैन्यमें बढ़-बढ़ कर आप नर-मुण्डोंके ढेर लगा रहे थे? क्या मुझ अनाथिनीपर यह अन्याय नहीं है?"

भगवान राजमतीकी इस कटोक्ति पर तनिक मुस्कराये और फिर कहने लगे, "राजकुमारी! मिथ्या मोहके उद्वेगमें तुम इस समय बही जारही हो; यही कारण है कि तुम वस्तुस्थितिको देखनेमें असमर्थ हो।"

"प्रिय आर्य! भला अपने सर्वस्वके लिये छटपटाना भी कहीं मिथ्यात्व होसक्ता है?" राजमती बीचमें ही बोली—

भगवानने उत्तरमें कहा—"राजुल! यही तो बात है—जगके लोग जिसे सच्चा समझते हैं, वह बिल्कुल धोखेकी टट्टी है। प्रत्येक प्राणीका सर्वस्व उसकी निज आत्मा है। यह भूल है, जो अपनेसे भिन्नको ही कोई अपना सर्वस्व समझे। सच तो यह है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, प्रत्येक प्राणीको आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करनेका उद्योग करना परम उपादेय है। गृहस्थ रूपमें भी उन्हें इस मूलतत्वको न भूलना होगा।"

"महाभाग! यदि आपकी यही सूझ थी तो फिर कुरुक्षेत्रमें

क्यों पहुंचे और क्यों मुकुट पीतांबर पहन, कंकन बांधकर मेरे चित-चोर बन गये ?"—राजुलने कहा—

भगवान बोलेः—"राजकुमारी ! मोहने तुम्हारे विवेकको छुपा दिया है। जरा सोचो, गृहस्थ जीवनमें मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थोंका साधन करना होता है—उस दशामें मोक्ष पुरुषार्थ उसके लिये दूरकी वस्तु है। कुरुक्षेत्रमें यादवों और जरासिंधुका युद्ध अन्यायके प्रतीकारके लिये हुआ धर्मयुद्ध था। उसमें भाग लेना और अपने देशकी रक्षा करना मेरा राष्ट्रधर्म था। दूसरे शब्दोंमें कहूं तो यह कर्म, धर्म और अर्थ पुरुषार्थको व्यक्त करना था। यह कार्य प्रगटतः अवश्य ही दयामूलक धर्ममई नहीं जंचता। परन्तु उसकी जड़में प्राणीके दयामय धर्मभाव ही कार्यकारी है। अहिंसक वीर अवश्य ही जानबूझकर किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुंचाता, प्राण हीन करना तो दूरकी बात है। किन्तु इतनेपर भी तीर्थंकरोंने उसे विरोधी हिंसाका पातकी नहीं ठहराया है। आततायियोंको उचित दंड देना उसका धर्म है। मेरा युद्धमें भाग लेनेका यही रहस्य है। रही व्याहकी बात, सो राजुल ! अबकी ही क्या, नौ भवोंसे मेरा तेरा साथ रहा है और तौभी संतोष न हुआ तो अब क्या होगा ? इसलिये आत्मस्वातंत्र्य लाभ करना ही मैंने उचित समझा है।"

राजमती भगवानके वचनामृतको एकटक पी गई और वह उनके मुखकी ओर चुपचाप निहारती रही। गुरुजनोंने उसे प्रतिबुद्ध किया और वह भी साध्वी हो सन्यास ले गई। श्री नेमि और राजुल कर्मशत्रुओंसे बढ़ चढ़कर युद्ध करनेमें जुट गये।

भगवान् अरिष्टनेमि अन्तमें कैवल्यपदको प्राप्त हुये थे और उन्होंने साक्षात् तीर्थंकर रूपमें सर्वत्र विहार करके लोकके दुःखी जीवोंका अपने धर्मोपदेशसे बड़ा उपकार किया था। जैनोंके २४ तीर्थंकरोंमें वह बावीसवें थे और गिरिनार पर्वतसे उन्होंने मोक्षलाभ किया था। राजमती भी एक आदर्श तपस्विनी बनकर लोकका कल्याण करती हुई स्वर्गधाम सिधारी थी। तबसे भगवान् नेमि-नाथकी उपासना बराबर जैनियोंमें होती आरही है। जैनियों हीमें क्यों, प्रत्युत वैदिक मतानुयाइयोंमें भी वे आदरकी दृष्टिसे देखे गये हैं—'ऋग्वेद' (प्रथमाष्टक अ० ६ वर्ग १६)में है कि अरिष्टनेमि हमारा कल्याण करे। (स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः) यजुर्वेद (अ० ९ मं० २९)में भी इन्हीं राजा नेमिको आहुति भेट की गई है। इसी प्रकार 'महाभारत' (वनपर्व अ० १८३ प्र० २७)में भी भगवान अरिष्टनेमिका स्मरण किया गया है। वहां लिखा है कि—'महात्मा मुनि अरिष्टनेमि हैहयवंशी काश्यपगोत्री थे। सबने महाव्रतधारी अरिष्टनेमि मुनिको प्रणाम किया।' (महाभारत छपी १९०७ सरतचंद्र सोम) आओ, पाठक ! इन भारतरत्न भगवान् अरिष्टनेमिको हम भी प्रणाम करलें।

(२)

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ।

चांदनी रात थी । पूर्णमासीका चन्द्रमा नीलाकाशमें छिटक रहा था । इसी समय एक युगल-दम्पति वृक्ष-तले प्रेमाबद्ध खड़े थे; मानो वृक्ष-लताओंसे प्रणयका पाठ ही सीख रहे हों । युवक देखनेमें बड़ा ही सुंदर और भाग्यशाली राजकुमार जान पड़ता था । उसके मुख-मण्डल पर रूप और प्रतिभाकी रश्मियां केलि कर रहीं थीं । आयुमें युवतीसे वह कुछ अधिक था और रंग भी उसका भारतीय क्षत्रियों जैसा गेहुवां था ! पर वह युवती उससे कहीं ज्यादा गोरी और कम उम्र थी, वह पूरी मेम सरीखी थी ! उसकी आंखें बड़ी बड़ी थीं और बाल सुनहले और लम्बे थे । कमर केहरीकी तरह पतली और चपलता मृगके बच्चेकी चंचलताको भी मात करती थी । सच पूछो तो सुन्दरी राजकुमारके दृढ़ आलिंगनमें कृष्ण और रुक्मिणीकासा आभास देरही थी । राजकुमारने उससे कहाः—

"तो आप यूनानी सरदारकी बेटी हैं ?"

युवती उत्तरमें बोली, "हां मेरे पिता इस यूनानी शिविरके अधिपति हैं ।"

"अहा ! समझा ! आप शत्रु-कन्या हैं ?" राजकुमारकी इस बातपर युवती चौंक पड़ी और बोली—"तो क्या आप ही सम्राट् चन्द्रगुप्त हैं ?"

"हां प्रिये ! जिसके प्रति तुमने प्रेम-बारि बहाया है, वह चन्द्रगुप्त ही है । पर घबड़ाओ मत; मैं जितना ही उद्दण्ड सैनिक

हूँ उतना ही भावुक प्रेमी भी हूँ। तुम्हें अपने हृदयका हार बना कर रक्खूंगा, प्यारी हेलेन!" चन्द्रगुप्तने यह कहते हुये हेलेनका मुख चूम लिया।

"भाग्यकी बात भाग्य जाने" हेलेन बोली, "पर मेरे लिये यह अनहोनी क्यों कर होवे?" चन्द्रगुप्तने कहा, "क्यों? तुम्हें तो यह देश बड़ा प्यारा है!"

"यह देश—यह हराभरा देश सचमुच बड़ा प्यारा है और आपकी निकटतामें तो उसका मोल आंक लेना, मेरे लिये असँभव है।" हेलेनके इन वाक्योंको सुन कर चन्द्रगुप्तने कहा—"तो फिर निराश क्यों होती हो?"

"निराश! निराशा ही भाग्यमें बदी हो तो?" हेलेन बोली।

चन्द्रगुप्तने कहा—"इस निराशाके खण्ड खण्ड मेरी तलवार कर देगी और प्यारी हेलेन मेरे महलोंकी रानी बनेगी!"

हेलेनने कटाक्ष किया—"प्रेम अँधा होता है-सोचिये, आप एक यूनानीकी कन्याको अपनी रानी बनानेमें समर्थ होंगे क्या?"

चन्द्रगुप्तने कहा—"क्यों! क्या हुआ? धर्म-शास्त्र मनुष्यर में भेद नहीं बतलाते। मैं ही क्या अनोखा हूं! तीर्थंश्वर शांतिनाथ जैसे महापुरुषोंने तो म्लेच्छ कन्याओंको अपनी पत्नी बनाया था। कल ही की तो बात है; नन्दराजाने एक शूद्राके साथ विवाह किया था। प्यारी! हमारे धर्म और देशमें मनुष्योंको मनुष्य ही समझा जाता है, फिर वे चाहे जिस देश या कुलमें जन्मे हों। हां! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भेद अवश्य हैं, पर वह मात्र कल्पना है, राष्ट्रकी व्यवस्थाको ठीक रखनेके साधन मात्र हैं और गुण कर्म-

पर टिके हुये हैं। तुम जरा भी भय न करो। राजमहलमें तुम्हीं मेरी दुलारी रानी होगी।"

हेलेन जरा होठोंमें मुस्कराई, पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर बोली—"यह भी ठीक सही; पर पिताजीकी स्वीकारता मिलना तो कठिन है।"

चन्द्रगुप्त भी असमंजसमें पड़े बड़बड़ाये—"हां, है तो टेढ़ी खीर।" पर दुसरे ही क्षण संभलकर बोले—"लेकिन मेरी बाहोंमें बल है तो कोई भी तुम्हें मुझसे अलग नहीं कर सक्ता।"

"हां! यह घमण्ड है तो आ मुझसे निवट ले। अकेली दुकेली रमणियोंको बहका लेनेमें क्या बहादुरी है?" एक टोप बख्तर पहने हुए पुरुषने सामने आकर कहा।

चन्द्रगुप्त और हेलेन हड़बड़ा गये—उनके समय प्राप्त प्रेमालापमें आज यह दालभातमें मूसरचंदकी तरह कौन कूद पड़ा? हेलेनको बाह्य आकृतिसे पहचाननेमें देर न लगी। चंद्रगुप्त और टोपबख्तर धारीके वीचमें पड़कर वह बोली—"पिताजी! यह सम्राट् चंद्रगुप्त हैं। मैं इन्हें स्वयं प्यार करती हूं। यह बड़े अच्छे हैं।"

सिल्यूकसने झिड़की दी—"चुप छोकरी! आज मैं इसका साहस देखूँगा।" क्षत्री चंद्रगुप्तकी नसोंमें खून खौलने लगा और वह अपनी तलवार संभालते हुए अगाड़ी बढ़नेको ही थे कि पेड़की आड़मेंसे चाणक्यने प्रगट होकर ललकारा—"खबरदार, यवन सरदार! तुम्हारा यह साहस! सम्राट्से पीछे, पहले इस भारतीय सैनिकसे ही निवट लो।"

सिल्यूकस इस भीमकाय व्यक्तिके अकस्मात आगमनपर भौंच-

फासा रह गया। वह द्विविधामें पड़ा, अभी कुछ निश्चय न कर पाया था कि हेलेन पिताके पैरोंपर गिरकर फूट फूटकर रोने लगी। सिल्यूकसके कठोर हृदयको इस करुण दृश्यने नरम बना दिया। वह पसीज गया। चाणक्य इस सुअवसरकी बाटमें थे, झट बोले:—

"यवन सरदार! भारतीय और यवन सेनाओंके बल और चातुर्यका परिचय किसीसे छिपा नहीं है। अब और अधिक रक्तपात करनेमें मजा नहीं है। मानो प्रकृतिदेवीने स्वयं इस विरोधको प्रेमाभिनयमें पलट दिया है। देखो! उसके इस आदेशको मत ठुकराओ।"

सिल्यूकस कुछ न बोला। वह सबको अभिवादन करके अपने शिविरको चला गया। दूसरे ही दिन यूनानियोंके सैन्यदलमें आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा, हर किसीकी ज़बानपर था—"हेलेनका विवाह चन्द्रगुप्तसे होरहा है।"

चन्द्रगुप्तको हेलेन मिली और हेलेनके साथ अफगानिस्तानका प्रांत। दम्पतिके प्रथम सम्मिलनमें चन्द्रगुप्तने हेलेनका अधरामृत पान करते हुए कहा—"अब तो यह देश तुम्हें न छोड़ना पड़ेगा, मेरी रानी!" हेलेनकी आंखोंने मादक हँसी हँस दी।

❦

दिन बीतते देर न लगी। चन्द्रगुप्त और हेलेनके स्मृतिपट परसे प्रेम-मिलनकी पहली झाँकी अब ओझल हो चली थी! वह रलमिलके दो तन एक दिल तो बहुत पहले ही हो गये थे। अब उन्हें विवेककी बातें बड़ी प्यारी लगतीं थीं। पाटलिपुत्रमें देवेन्द्रके महलको चुनौती देनेवाले राजमहलके झरोकेमें बैठकर वे ज्ञानकी बातें किया करते थे। 'समय-नटके हाथमें पड़ कर मनुष्य कैसे२

नाच करता है,' यह उन्हें देखते ही कोई पुराना सैनिक अनायास कह उठता था। 'एक दिन वह था जब यही महाराज चन्द्रगुप्त अपनी तलवारको सदा म्यानके बाहर किये हुये अरिकुलके लिये काल स्वरूप थे और आज वे ही ज्ञानी-विवेकी हैं! भई, यह जगतकी लीला है-नटखट मनका नाच है।' ऐसी बातें सुन कर कोई धर्म-प्रेमी शिक्षित सैनिक बोल उठता-'अरे, इसमें कौनसी अचरजकी बात है! रघुकुल-सूर्यवंशमें तो यह रीति सदासे चली आई है कि बुढ़ापेको पहुंचते न पहुंचते राजागण तपोभूमिको शरण लेते और जनकल्याणमें निरत होते थे। आश्चर्य तो यह है कि हमारे महाराज इतनी बड़ी उम्रमें भी राज काजमें पगे हुये हैं।' तीसरा कहता—'हाँ भाई, कहते तो ठीक हो; महाराजको अब किस बातकी कमी है! दिग्विजय वह कर चुके, युवराज सियाने हुये, अब महाराजको तपोधन बनते देर न लगेगी।' भारत-सम्राटके विषयमें ऐसी चरचा होती रहे और उन्हें पता न लगे यह अनहोनी बात है। सच बात तो यह है कि चन्द्रगुप्त हेलेनसे अभी यही बातें कर रहे थे कि उनकी दृष्टि राजमार्गसे जाते हुये परम-साधु श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुजी पर जा गिरी, उन्होंने खड़े होकर नमस्कार किया, हेलेन भी नमस्कार करनेमें पीछे न रही! हेलेनका हाथ हाथमें लेते हुये चन्द्रगुप्त बोले—"हेलेन! चलो आहारकी वेला हो गई है। गुरुमहाराजका आदर सत्कार करें।"

हेलेनने अपने पतिके यह शब्द सुने तो जरूर, परन्तु उसके कान चन्द्रगुप्तके पास होते हुये भी नेत्र मुनिराजके धूल-धूसरित कृश शरीर पर ही अटके हुये थे। वह हड़बड़ाके बोली—

"पर देखो तो नाथ! आज गुरुमहाराज तो राजमहलका सिंहद्वार लाँघ गये। वह लौटते भी नजर नहीं आते।"

चन्द्र०—"अरे हाँ, भगवान तो एकटक चले ही जा रहे यह क्या बात है?"

प्रतिहारीने प्रगट होकर निवेदन किया—"महाराजाधिराज! आज नगरमें बड़ी अनहोनी बात हो गई।"

चन्द्र०—"क्या हुआ वत्स?"

प्रति०—"प्रजावत्सल सम्राट्! जब तपोधन भगवान भद्रबाहु-स्वामी नगरश्रेष्टीके यहां आहारके निमित्त घुसे, तो पालनेमें झूलते हुये अबोध शिशुने उन्हें लौट जानेको कहा। महाराज वहांसे सीधे तपोभूमिको विहार कर गये हैं।"

चन्द्र०—"सचमुच यह बड़े अचरजकी बात है। चलो हेलेन, श्री गुरुकी वंदना कर आवें।"

प्रतिहारीके मुखसे सम्राट्के गुरु वंदन यात्राकी खबर चारों ओर फैल गई।

चन्द्रगुप्त और हेलेनने देखा कि श्रुतकेवलि भद्रबाहुकी लोक-कल्याणक धर्मदेशना हो रही है। उन्होंने दूरसे उनको नमस्कार किया और एक ओर उपयुक्त स्थान पर बैठ गये। धर्मोपदेशको सुनते हुये हेलेनके मनमें एक शङ्काने जन्म ले लिया। वह श्री गुरुसे उसका समाधान करानेकी प्रतीक्षामें रही। भगवान्का धर्मो-पदेश पूर्ण हुआ और वह बोली—"पूज्यवर, आपकी वाणी अज्ञान तिमिरको नाश करनेमें समर्थ है। प्रभो, मेरी मूढ़ बुद्धि यह समझनेमें

असमर्थ है कि एक सैनिक अहिंसाव्रतको कैसे पाल सक्ता है ?"

भगवान् बोले–"सुन श्रेष्ट श्राविका, तेरा समाधान अभी होता है। ऋषियोंने अहिंसा धर्म दो तरहका बताया है–(१) अहिंसा महाव्रत और (२) अहिंसा अणुव्रत। प्रथम व्रतको गृहत्यागी साधुजन ही धारण करते हैं। वही अहिंसा धर्मको पूर्णतः पालन करनेमें समर्थ हैं। गृहीलोग उसका पूर्ण पालन नहीं कर सक्ते उनके लिये इस व्रतका दूसरा आंशिकरूप ही पर्याप्त है। गृहस्थोंके पास धन-दौलत, पृथ्वी-मकान, कपड़े-लत्ते, जेवर-जाथा और न जाने क्या क्या परिग्रह है। उन्हें उसकी रक्षा करना आवश्यक है। इसलिये ही सर्वज्ञ प्रभूने उनको आरंभ और विरोधजनित हिंसाका पातकी नहीं ठहराया है। व्यापार-उद्योग आदिमें जो हिंसा होगी वह उनके लिये क्षमा है और अपने परिग्रह एवं अन्य स्वत्वोंकी रक्षाके लिये विरोधियोंको समरभूमिमें उचित दण्ड देते हुये जो हिंसा होगी, उसके भी वे भागी नहीं हैं। सैनिकका आतताईको सन्मार्ग पर लानेके लिये तलवार चलाना धर्ममें मना नहीं है। मनाई है तो सिर्फ जानबूझ कर कषायोंके आवेशमें किसी प्राणीके प्राण लेनेकी। भला, यह कौन चाहेगा कि मैं मारा जाऊं ? सबको अपने प्राण प्यारे हैं इसलिये यथाशक्ति अहिंसा धर्मका पालन करना ही श्रेष्ठ है। भव्यात्मा ! अब तेरी आत्मसंतुष्टि हो गई ना ?"

हेलेनने 'तथास्तु' कह कर भगवान्‌को नमस्कार किया। उपरांत चन्द्रगुप्तने देखा, स्वामी उनकी ओर आकृष्ट हैं। उपयुक्त अवसर जान कर उन्होंने पूंछा "भगवन् ! आज आप निराहार ही लौट आये, इसका क्या कारण है ?"

श्रुतकेवलि भद्रबाहुने उत्तरमें कहा—"मगधेश ! तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर तो स्वयं ही प्रगट होनेवाला था। सुनो, आज एक अबोध बालकने मुझसे लौट जानेको कहा और मैंने अपने ज्ञानके बल देखा, तो इस निमित्तका महा भयानक फल जाना। सम्राट्, भावी अमिट है। मगधमें शीघ्र ही घोर दुष्काल पड़ने वाला है और उसका परिणाम जैनसंघके लिये अत्यन्त कटुक है। धर्मोत्कर्षके भावसे मैं समस्त जैनसंघके प्रति आदेश करता हूं कि वह सुकालवर्ती दक्षिण भारतकी ओर प्रयाण करनेको तत्पर हो जायें। राजन्, मेरे निराहार लौट आनेका यही कारण है।"

चन्द्र०—"प्रभो, आपकी इस भविष्यद्वाणीको सुनकर मैं भयभीत हूं। मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है?"

भद्र०—"वत्स, राजाका धर्म है कि प्रजाकी हितरक्षा और उसके धर्मकी वृद्धि करना। संकट कालमें भी तुम अपने कर्तव्यसे च्युत न होना। मैं तो कल यहांसे प्रयाण कर जाऊंगा। देखो, आत्म-कल्याण करना न भूलना। मनुष्य जन्मका यही सार है।"

चन्द्र०—"गुरुवर्यका आदेश सिर आंखोंपर धारण करता हूं—पर प्रभो, आपका वियोग मेरे लिये असह्य है!"

भद्र०—"भूल है, चन्द्रगुप्त, यह बड़ी भूल है। मोह करना फिजूल है। जाओ धर्मवृद्धिका लाभ हो!"

चन्द्रगुप्त और हेलेनने गुरुमहाराजके चरण-कमलोंमें मस्तक नंवाया और वे राजमहलको लौट चले। मार्गमें हेलेनने पूछा—"श्री गुरुके दर्शन पाकर प्रसन्न होनेके स्थान पर, प्रिय, उदास क्यों हो?" चन्द्रगुप्त कुछ न बोले और गहन विचारमें डूबे हुये राजमहल पहुंच गये।

हेलेन घबड़ाई हुई चन्द्रगुप्तके पास आकर बोली–"नाथ, मैं यह क्या सुन रही हूं? अरे! यह क्या देख रही हूं? आप और यह भेष? क्यों? यह न होनेका।"

चन्द्र०–"भूल, बड़ी भूल! हेलेन! गुरु महाराजके उपदेशको भूल गईं।"

हेलेन–"जब मैंने यह सुना कि युवराज विन्दुसारका आपने राजतिलक कर दिया, तब ही मेरा माथा ठनका था। नाथ! त्याग धर्मको घरमें रहकर ही पालन करो, मुझे अनाथ न बनाओ।"

चन्द्र०–"फिर भूलती हो, हेलेन! अपने निश्चयरूपको देखो! कहो, तुम अनाथ हो?"

हेलेन–"अहा! मैं समझी, आप तो 'परमपद' के विहारी होगये हैं। मेरा अनुनय विनय करना वृथा है। अच्छा प्रभो! नमस्कार, शतवार नमस्कार! राजर्षि! दासी भी आत्मकल्याणके मार्गसे अब भटकी न रहेगी। आशीर्वाद दो प्रभो! मेरा कल्याण हो।"

चन्द्र०–धन्य हो देवी! तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा।

श्रवणबेलगोलके कटवप्र पर्वतपर अपार जनसमूह उमड़ा चला आरहा है। कोई 'श्रुतकेवली भद्रबाहुकी जय' के नारे लगा रहा है, तो कोई 'राजर्षि चन्द्रगुप्तका' जयघोष कर रहा है। इन दोनों महापुरुषोंका यहींपर समाधिमरण हुये अधिक समय नहीं वीता है। इन्हीं महापुरुषोंकी पवित्र स्मृतिमें सम्राट् विन्दुसार और युवराज अशोकवर्द्धनने कई भव्य जिनमंदिर और निषधिकायें निर्माण

करा दिये और वे स्वयं इस पवित्र स्थानकी वंदना करनेके लिये उपस्थित हुये थे। श्रीभद्रबाहु और चन्द्रगुप्तके नामको उन्होंने अमर कर दिया। कटवप्र पर्वत चन्द्रगुप्तको अपने भाग्यशाली अंकमें धारण करनेके कारण "चन्द्रगिरि" नामसे प्रसिद्ध होगया और उसपर सम्राट्की जीवन घटनाओंके मनोहर चित्र आज भी उकेरे हुए देखनेको मिलते हैं। मुकुटबद्ध राजाओंमें सर्व अंतिम चंद्रगुप्त मौर्य ही ऐसे सम्राट् थे, जिन्होंने श्री दिगम्बरीय जिन दिक्षा ग्रहण की थी; यह बात आज भी इन स्मारकोंसे स्पष्ट है।

(३)

सम्राट् ऐल खारवेल ।

सफेद घोड़ेपर सवार राजकुमारने कहा—" बड़ा घना जंगल है। पेड़ोंने गलबइयां डालकर रास्ता ही रोक रक्खा है ! देखो, पगडंडोका भी चिन्ह दिखाई नहीं पड़ता ! "

दूसरे घुड़सवारने जवाब दिया—" युवराज, आप सच कह रहे हैं । इस गहन वनसे सकुशल निकल चलना भाग्य भरोसे है। पर एक बात है; आप कहें तो मैं वनदेवीको प्रसन्न करनेके लिये यहीं आसन जमाकर जम जाऊं ! "

राजकुमार बोले—"तुझे आफतमें भी मसखरापन सूझा है।"

घुड़०—" नहीं अन्नदाता; लो मैं आपसे अगाड़ी चला ! "

राज०—" अरे मूर्ख, मैंने यह थोड़े ही कहा था, कितू मुझे छोड़कर चलता बन। देख, उधर सामनेकी ओरसे कुत्तोंके भूकनेकी आवाज आरही है । जा, वहां आदमी जरूर होंगे—उनसे कलिङ्ग-शिविरका रास्ता पूंछ आ। "

घुड़—" अच्छा महाराज, यह लो। "

राजकुमार भी उसके पीछे हो लिये । अभी वह वहुत दूर नहीं गये थे कि साथी घुड़सवारने लौटकर कहा—" महाराज, मेरी भावना तो सफल होगई ! "

राज०—" आखिर देखा क्या ? "

घुड़—" बस, कुछ न पूछिये—साक्षात् वनदेवी प्रसन्न होकर प्रगट हुई हैं । "

राज०—"फिर वही मसखरेपनकी बातें ! ठीक २ बता, रास्ता पूंछकर आया या नहीं !"

घुड़—"दुहाई महाराजकी ! मैं झूठ नहीं बोलता। चलिये आप आंखोंसे वनदेवीके दर्शन कर लीजिये।"

इसपर दोनों व्यक्ति अगाड़ी बढ़ गये। उन्होंने देखा एक कलकलनिनादपूर्ण पहाड़ी झरना बह रहा है और उसके दोनों किनारोंपर कदम्ब आदिके सुन्दर वृक्ष खड़े हुये हैं। इन्हीं वृक्षोंके एक प्राकृत झुरमुटमें कुछ कन्यायें बैठी हुई हैं। उनमेंसे एक साक्षात् वनदेवी और रतिके रूपको चिनौती देरही है। उसके हाथोंमें तीर-तरकस मानो उसे रण-चन्डीका प्रतिनिधि ही व्यक्त कर रहा है। शरीर यद्यपि स्थूल नहीं, पर लम्बा और हृष्टपुष्ट था। और उसके मुखमण्डलपर एक अपूर्व प्रतिभा नाच रही थी। राजकुमार एकटक उसकी ओर निहारते रह गये। दूसरे क्षण उनकी तन्मयताको घुड़सवारने भंग कर दिया। वह बोला—"महाराज! अब दिलवाइये पुरस्कार! कहिये, मेरा झूठ कितना सच है?"

राज०—"चुप रहो, ग्वाल-कन्याओंके लिये इतना अभिमान न करो।"

"हैं! ग्वाल-कन्या! यह भी देखिये" कहता हुआ घुड़सवार कन्याओंके पास पहुंच गया और बोला—"बहनो, हम दो पथिक इस वनमें भटक गये हैं। तुम रास्ता जानती हो तो बतानेकी दया करो।"

उनमेंसे एकने कहा—"पथिक, आप पूर्वकी ओर सीधे बढ़ जाइये। थोड़ी दूर चलनेपर आपको कलिंगसे विदिशाको जानेवाला

राजमार्ग मिल जायगा। पर एक बातका ध्यान रखना, उसपर अगाड़ी आपको कलिंगाधिपका सैन्य शिविर मिलेगा।"

घुड़०—"सो कुछ हर्ज नहीं। हम लोग वहीं जारहे हैं।"

कन्या—"अहा! तो आपके साथी कोई उच्च सैनिक जान पड़ते हैं।"

घुड़०—"हां, वह राजकुमार हैं।"

कन्या—"कौन? कहांके राजकुमार?"

घुड़०—"क्षमा करना बहिन! पर इसका उत्तर मैं तब दूंगा जब पहले आपकी सखीका परिचय पालूंगा। वे भी कोई उच्च कुलांगना जान पड़ती हैं।"

कन्या—"आपका अनुमान सत्य है। वे सिंहपथके राजाकी राजदुलारी हैं। जबसे शत्रुओंके अत्याचारसे सिंहपथ छोड़कर वे यहां आई हैं, तबसे उन्होंने इस वनको अपनी विहारभूमि बना लिया है और धनुर्विद्यामें तो आप एक हैं।"

घुड़०—"क्षत्री कन्याका यह आदर्श अभिवन्दनीय है। हमारे राजकुमार इनके पिताकी सहायताके लिये आये हैं। वह कलिंगके युवराज ऐल खारवेल हैं।"

कन्या—"अहोभाग्य हमारे! युवराजके दर्शनोंका सौभाग्य अनायास ही मिला।"

यह सुनकर सब ही कन्याओंने युवराजका अभिवादन किया। युवराज और घुड़सवार उनका आभार मानकर अपने रास्ते लगे। रास्तेमें घुड़सवारने देखा, युवराजके मुखपर चञ्चलता छारही है। वह रुक २ कर पीछेकी ओर निहार रहे हैं। एकवार साहस करके

उसने भी पीछे घूमकर देखा और देखा—'राजदुलारी भी उनकी ओर टकटकी लगाये खड़ी है।' घुड़सवार बड़बड़ाया—"वनदेवीको प्रसन्न करनेकी भावना की किसने और चितचोर बन बैठा कौन? भाग्य! प्रारब्ध!!"

उसका बड़बड़ाना खतम न हुआ कि इतनेमें उसकी गरदन जगमगाते हारसे भर गई। वह चौंक पड़ा। युवराजने कहा—"भाग्य! प्रारब्ध!!"

अँधेरी आधी रात थी। चारोंओर निस्तब्धता छारही थी। सहसा कलिंग शिविरमें एक ओरसे 'मारो, काटो' की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। कलिंग सेनामें खलबली मच गई। ऐल खारवेलने चौंककर पूछा—"यह कोलाहल कैसा है?"

सन्तरी उत्तर देनेको ही था कि हड़बड़ाये हुये सेनापतिने प्रवेश किया और कहा कि "युवराज! बड़ा अन्धेर हुआ। शत्रुने विश्वासघात करके हमारी सेनापर अचानक धावा बोल दिया है।"

युवराज—"अच्छा, यह अधर्म! कुछ परवा नहीं। क्षत्री सदा ही अधर्मका नाश करनेके लिये तैयार हैं। सेनापति! तुमने सेना तैयार कर ली?"

सेना०—"महाराज! यथाशक्ति सेनाकी समुचित व्यवस्था करके आपको सचेत करनेके लिये चला आया हूं। लेकिन इस अन्धेरी रातमें शत्रु और मित्रको पहचान लेना बड़ा कठिन होरहा है। कलिंग सैन्य दुर्दान्तदर्पसे शत्रुओंका सामना कर रहा है।"

युवराज—"जिनेन्द्र भगवानका स्मरण करो, भाग्यने चाहा तो विजय अपने हाथ रहेगी।"

सन्तरीने आकर कहा—"सम्राट्का हाथी तैयार है। शत्रुदल बढ़ता आरहा है।"

ऐल खारवेल हाथीके हौदेमें जा विराजे और बड़े कौशलसे युद्ध करने लगे; किन्तु अकस्मात् आई हुई इस आफतके लिये उनका सैन्यदल तैयार नहीं था। इस कारण उसके पैर उखड़ चले। यह देखकर खारवेलने राजा वेणके समान शौर्यको प्रकट किया—वे अकेले ही हाथी बढ़ाते हुये वहां पहुंचे जहां घमसान युद्ध हो रहा था। देखते ही देखते शत्रुदलने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। बेचारा हाथी बुरी तरह घायल होकर जमीन पर आ लगा और खारवेल ढाल-तलवार ले भीषण युद्ध करने लगे। अकेले वह हजारों सैनिकोंके वार सहन कर रहे थे; परन्तु उनके रणकौशलको कोई नहीं पाता था!

इस संकटके समयमें छटे हुये नौजवानोंका एक अश्वदल अचानक अरि-कुलमें आ धमका। उसके तीरोंकी विकट मारसे शत्रुओंके छक्के छूट चले। शत्रुओंको भागते देखकर कलिङ्ग सेनाके पैर जम गये—वह दुगुने उत्साहसे शत्रुओंका पीछा करने लगी! महा घमंसान् युद्ध हुआ और शत्रु अपना बोरिया-बंधना उठा कर सिंहपथसे भाग गया! 'ऐल खारवेलकी जय' से आकाश गूंज उठा!

❦

सिंहपथके युद्धमें खारवेल बेढब जख्मी हुये थे—उनकी सेवा-सुश्रूषा सिंहपथके राजमहलमें हो रही थी। अल्प समयमें ही वह अच्छे हो गये और सब लोग विजयोल्लासमें खुशियां मनाने लगे। खारवेलने सबसे पहले उस युवा सैनिकको याद किया;

जिसने उनकी सहायता घोर संग्राममें की थी। उनकी आज्ञानुसार वह युवक उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। उसको देखकर खारवेल एक क्षणके लिये उसकी ओर निहारते रह गये; फिर संभल कर बोले—' वत्स, मैं तुम्हारे समयोचित साहाय्यका चिरऋणी हूं। तुम्हारे विक्रम और शौर्यने ही मुझे नवजीवन दिया है।"

युवक—"महाराज, यह युवक किस योग्य है? यह तो श्रीमान्के पुण्यका प्रभाव था कि मैं अपने देश और अपने राजाकी किञ्चित सेवा कर सका हूं।"

खार०—"धन्य हो वीर! तुम्हारे समान नर-रत्न ही इस देशकी शोभा हैं। पर एक बात बताओ; मेरा दिल कहता है कि मैंने तुमको कहीं देखा है।"

"संभव है, महाराजने मुझे कहीं देखा हो।" कहकर युवकने अपनी आंखें जमीनमें गाड़ दीं, उसका चहरा लज्जासे लाल होगया।

खारवेलको और भी कौतूहल बढ़ा। उन्होंने कहा—"वीर युवक! तुम तो बड़े रहस्य-भरे मालूम होते हो। अच्छा यह बताओ, सिंहपथके राजवंशसे तुम्हारा क्या सम्बंध है?"

युवकने बड़े साहससे कहा—'सिंहपथका राजवंश! पर मैं तो वनफूल हूं।"

खार०—"युवक! तुम तो पहेलियां रच रहे हो, पर तुम अपने सम्बन्धको छुपा नहीं सके! सिंहपथकी राजदुलारीकी मुखाकृतिसे तुम्हारा सादृश्य, किसे दिखाई नहीं पड़ता?....

युवक और अधिक बैठा न रह सका, वह युवराजके पैरोंपर

गिर पड़ा और बोला–"नाथ ! क्षमा करो ! मैं ही सिंहपथकी धृष्ट राजदुलारी हूं।"

खारवेलके आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा ! उन्होंने झटपट राजदुलारीको उठाकर छातीसे लगाते हुये कहा–" जिसने मुझे नवजीवन दिया, वही मेरे शेष जीवनका सारथि और संरक्षक होगा।" युवक-भेषधारी राजदुलारी आनन्दातिरेकमें एक शब्द भी न कह सकी ! उसके अदभुत शौर्यकी प्रशंसा हरकोई करने लगा।

खारवेलका विवाह राजदुलारीसे होगया और अब वह कलिङ्गके राजसिंहासनपर आरूढ होगए।

सिंहपथकी राजदुलारी अब कलिङ्गकी महारानी होगई। वह एक दिन राजमहलमें बैठी हुई थीं कि दिग्विजयसे लौटे हुए सम्राट् खारवेल उधर आ निकले। महारानीने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया और अपने आसनपर ही उन्हें बैठा लिया। पतिदेवको प्रसन्न देखकर वह बोलीं–" मैं तो समझ रही थी कि सौतन विजय-लक्ष्मीके फन्देमें आप ऐसे उलझे हैं, जो अब शायद ही मुझे आपके दर्शन नसीब हों, पर धन्य मेरा सौभाग्य ! आज मेरे भाग्यके द्वार खुल गये !!"

खारवेलने रानीके कोमल और प्रफुल्ल मुखपर धीरेसे चपत लगाते हुये कहा–" तुम्हें यह न सूझेगा और क्या ? भारतके इस ओरसे उस ओर तककी दिग्विजयमें मुझे कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा, इसकी कुछ बात ही नहीं ? बारहवें महीनेसे तेरहवां महीना न लगा और लो, उलहने शुरू होगये !"

महा०—" अहा ! मैं न समझी थी कि आप इतने सुकुमार होगये हैं। मैंने आपको पानेके लिये धनुष-बाण लेकर कितना परिश्रम किया था ! आज आपने भारत-विजयमें कठिनाइयां सहन कीं तो क्या हुआ ? सम्राट् भी तो आप बन गए !"

खार०—" और तुम सम्राज्ञी मुफ्तमें ही बन गई ! अच्छा जो कहो सो ठीक। लेकिन यह तो बताओ, कुमारीपर्वतपर जो तुमने जिनमंदिर बनवाना शुरू किया था, उसका क्या हुआ ? "

महा०—"आर्यपुत्रके अनुग्रहसे वह बनकर तैयार है। अब उसमें मात्र श्री जिनेन्द्र भगवानको विराजमान करानेकी देर है।"

खार०—"इसकी चिन्ता न करो, प्रिये ! तुम्हारे पुण्योदयसे मगध विजयमें कलिंगके श्री अग्र-जिनकी मनोज्ञ मूर्ति मिल गई और वह फिर वापिस कलिंगको आरही है।"

महा०—"धन्य हो प्रभो ! सचमुच यह आदिनाथ भगवानकी मूर्ति इस मंदिरकी शोभाको दुगुनी कर देगी। प्राणनाथ ! अब इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये।"

"तथास्तु" कहकर सम्राट् खारवेल महारानीसे विदा हो गये।

कुमारीपर्वत पर अपूर्व महोत्सव हो रहा था। दूर दूरके यात्रीलोग वहां आये थे। मथुराका जैनसंघ पहलेसे ही आया हुआ था। उधर पश्चिम भारतके गिरिनगरसे और दक्षिणके कांचीपुरसे भी जैनसंघ आ गये थे। कुमारीपर्वतके जैनसंघने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। जैनसंघके बड़ेसे बड़े—दिग्गज विद्वान् आचार्य कुमारीपर्वतके महोत्सवमें सम्मिलित हुये थे। शुभ मुहूर्तमें

महारानी द्वारा निर्माण कराये हुये भव्य-जिन मंदिरमें श्री अग्रजिन विराजमान किए गये। सम्राट् ऐल खारवेलने इस हर्षोपलक्षमें चारों प्रकारका दान देकर पुण्य संचय किया। जय जयके निनादसे कुमारीपर्वत गूंज उठा और आचार्योंकी अज्ञानतिमिर-ध्वंसक वाक्प्रभासे मुमुक्षुओंको सन्मार्ग पर आनेका अलौकिक प्रकाश मिल गया। इसी समय आर्य-संघने मिलकर जैन-श्रुतका उद्धार कर लिया। अंतमें चतुर्विधि संघका एक वृहद् सम्मेलन हुआ और उसमें सम्राट् खारवेल और उनकी महिषी सिंहपथकी राजदुलारीका आभार स्वीकार किया गया। इसी समय एक ज्ञानी स्थिविरने घोषणा की—"इस कलिकालमें धर्म-सूर्यका उदय जिस महापुरुषके निमित्तसे आज हुआ है, उसकी प्रशंसा शतमुखसे करना भी न कुछ है। सम्राट् खारवेल चेदि राष्ट्रके शिरोमणि, कौशलेश ऐलेयके कुल-दीपक, देखनेमें स्वयं भगवान महावीरके समान और विक्रम शौर्यमें राजा वेण तुल्य हैं; परन्तु आज जिनवाणीका उद्धार कराकर वह इस लोकमें सर्वोपरि अनुपम पुरुष-रत्न हो गये हैं। और उनके अङ्कमें महाराणी सिंहपथा ऐसी शोभाको पारही हैं कि जैसी तीर्थङ्कर भगवानकी अधिष्ठात्री शासन-देवीको वह प्राप्त है। इन जीवित रत्न-दीपोंका प्रकाश और इस दिव्य महोत्सवका महत्व युग२ तक चिरंजीवी रहे। आओ, इस भावनाको पत्थरकी शिला पर अङ्कित करा कर अमर बना दो। बोलो भगवान महावीरकी जय"

संघने भी कहा—"भगवान महावीरकी जय।"

× × ×

ईस्वीसन्से करीब दो सौ वर्ष पहलेका उकेरा हुआ यह शिलालेख आज भी ओड़ीसाके उदयगिरि-खण्डगिरि (प्राचीन कुमारी) पर्वत पर की हाथी-गुफामें मौजूद है और सम्राट् खारवेल एवं उनकी महाराणीका यशोगान करके संघकी भावनाको फलितार्थ कर रहा है। यात्रीगण सम्राट् सम्राज्ञी द्वारा निर्माण कराए हुये जिनमंदिरोंके शिल्प-कार्यको देखकर "धन्य धन्य" कहते हुये हर्ष प्रकट करते हैं। किन्तु यह नहीं कहा जासक्ता कि उनमेंसे कितनोंको युगवीर खारवेलके आदर्श जीवनसे धर्म और राष्ट्रके प्रति कर्तव्य पालन करनेकी सुध आती है।

(४)
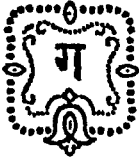
श्री चामुण्डराय।

गङ्गकुल–दीपक, धर्म–महाराजाधिराज, सत्य–वाक्य, कोङ्गुणिवर्म, पर्मनडि राचमल्लजीका दरबार लगा हुआ था। महाराजाधिराज राज-छत्रयुक्त राजसिंहासन पर बैठे हुये थे। उनके पास ही राजगुरु श्रीमान् सिद्धान्त-चक्रवर्ती महोघ-तपोधन भगवान् नेमिचंद्रजी विराजमान थे। उनसे सटे हुये गङ्गराजके प्रमुख महामात्य 'रणरङ्ग-मल्ल, असहाय-पराक्रम, गुण-रत्न-भूषण, सम्यक्त्व-रत्न-निलय' श्री चामुण्डरायजी आसीन थे। उनके चारों ओर अन्य दरबारी लोग बैठे हुये थे। अभी२ धर्मचर्चा होते रुकी थी कि द्वारपालने आकर निवेदन किया– "श्री महाराजकी सेवामें एक व्यापारी उपस्थित है।" राजाज्ञा हुई कि 'उसे आने दिया जाय।' तदनुसार हीरा और मणि मुक्ताओंके अलङ्कारोंसे सटा हुआ एक बड़ा व्यापारी आया और उसने राजाके आगे रत्नोंकी भेट रखकर प्रणाम किया। उसके रत्नोंकी परीक्षा जौहरी लोग करने लगे और राज–परिवारको जो रत्न पसंद आये वह लिये गये। दिगम्बर भेषधारी तपोभृत नेमिचन्द्राचार्यको देखकर उस व्यापारीकी कोई अतीत स्मृति हरी हो आई। वह प्रफुल्लमुख हो बोला–" महाराजाधिराजकी यदि आज्ञा हो, तो सेवक एक अश्रुतपूर्व तीर्थका वर्णन करे।"

राजाने कहा–"वत्स, तुम निडर होकर अपना वृत्तान्त कहो।"

इस आश्वासनको पाकर व्यापारीने कहना प्रारंभ किया–

"अवनिपति ! यहांसे उत्तर-पूर्वकी ओर कई देशोंको लांघ जानेके बाद एक बड़ा ही सुन्दर सुरम्य देश है। उसकी राजधानी पोदनपुर किसी समय एक विशाल नगर था। उसके अतीत गौरवके स्मृति-चिह्न अब भी अवशेष हैं। महाराज ! वहांपर सबसे बढ़िया और अनूठी वस्तु पांच सौ धनुष प्रमाण अवगाहनावाली श्रीबाहुबलिजीकी भव्य मूर्ति है। कहते हैं, उसको श्रीभरतराज चक्रवर्तीने निर्माण कराया था। संसार भरके यात्री उसके दर्शनोंको आते थे। किन्तु महाराज ! कालकी महिमा विचित्र है। कुछ वर्षोंसे उस मूर्तिकी देखभाल ठीक तरहसे न हुई और इसका परिणाम यह हुआ कि उसके चहुंओर कुक्कुट-सर्पोंने अपना अड्डा जमा लिया है।"

राजा०—"तो क्या अब वहांकी यात्रा बन्द हो गई है ?"

व्या०—"नहीं, महाराजाधिराज ! यात्रीगण दूरसे भगवानकी वंदना करके चले जाते हैं।"

राजा०—"वत्स, तुमने यह अच्छे समाचार सुनाये आज तुम राज्यके पाहुने हो।"

व्या०—'मेरे अहोभाग्य, श्रीमान्‌का मैं कृपापात्र हुआ।"

मुद्रामात्य चामुण्डरायजीकी वयोवृद्ध माताने भी उक्त तीर्थके समाचार सुने। वह उत्सुकतापूर्वक गुरुवर्य्य श्रीनेमिचन्द्राचार्यजीके निकट गई और नमस्कार करके उनसे पुछा-"गुरुदेव ! कृपा करके पोदनपुर तीर्थका महात्म्य बताइये !"

आचार्य महाराजने कहा—"भव्य श्राविके ! तेरा प्रश्न अत्यन्त उपयोगी है। सुन, इस कर्मभूमिकी आदिमें प्रथम

तीर्थङ्कर भगवान ऋषभनाथजीके अनेक पुत्र हुये थे। उसमें भरत और बाहुबलि विशेष उल्लेखनीय हैं। भरतने षट्खण्ड पृथ्वीको जीतकर चक्रवर्तीपद प्राप्त किया था और उनके नामकी अपेक्षा ही यह देश भारत वर्ष कहलाता है। बाहुबलिको सुरम्य देशका राज्य मिला था। उसकी राजधानी पोदनपुरमें रहकर वह उसपर राज्य करते थे। जब भरत सम्राट अपनी दिग्विजयसे लौटे, तो उन्हें विदित हुआ कि उनके भाइयोंने उनकी आधीनता स्वीकार नहीं की है। इस पर उन्होंने अपने भाइयोंके पास दूत भेजे। सब भाइयोंने तो उनको अपना राजा स्वीकार कर लिया, किन्तु हे भव्योत्तमा! बाहुबलिजीने उनका आधिपत्य माननेसे इनकार कर दिया। परिणामाधीन दोनों भाइयोंमें युद्ध हुआ और यही युद्ध श्री बाहुबलिके वैराग्यका कारण बन गया! वह समर भूमिसे सीधे अरण्यको चले गये और दिगम्बर मुनिवृत्तिको धारण करके घोर तपस्यामें निरत होगये। हे भक्तिवत्सला! जब वह भगवान बाहुबली मुक्तिधामको पयान कर गये, तब सम्राट भरतने उनकी पवित्र स्मृतिमें पोदनपुरके सन्निकट उनके आकारकी उन्नत और विशाल मूर्ति निर्माण कराई थी। तबहीसे पोदनपुर तीर्थ-रूपमें प्रसिद्ध है और यात्रियोंके लिये पुण्य-संचय करनेका कारण बन रहा है।"

श्री चामुण्डरायकी माता इस वृतान्तको सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं और बोलीं— "भगवानके अनुग्रहसे यह वृत्तान्त जानकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। प्रभो! मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि इस तीर्थकी यात्रा करके ही दूध ग्रहण करूंगी।"

आचार्य महाराजने उनके इस निश्चयकी सराहना की और वह भगवानकी वंदना करके चली गई !

शृङ्गराष्ट्रमें श्री चामुण्डरायके यात्रा-संघ ले जानेकी धूम मच गई। सर्वत्र यही चर्चा होने लगी। कोई कहता था कि 'यह अनहोनी कैसे संभव होगई? चामुण्डराय और यात्रासंघ!' उसका पडोसी बोला-' भाई इसमें अचरजकी कौनसीबात होगई?'

पहला-'लो, इनके लिये कुछ अचरजही नहीं! जिस व्यक्तिने सारी उम्र लडाइयोंमें अपनी तलवार घुमाते रहनेमें बिताई, उसके द्वारा यकायक कोई धर्मकार्य होजाना-मानों कुछ अचरज ही नहीं !'

दूसरा-' अरे जैन धर्मकी शिक्षाका यही प्रभाव है। श्री चामुण्डरायजी पक्के श्रावक....'

वह अपनी बात भी पूरी न कर पाया था कि बीचमेंही एक नवागन्तुकने पूंछा-'क्या सचमुच चामुण्डरायजी बड़े योद्धा हैं?'

पहला-' यह खूब कही! चामुण्डरायजीके विक्रम और शौर्यकी प्रसिद्धि तो चारों दिशाओंमें गूंज रही है!'

नवागन्तुक-" भाई, मैं सिंहलद्वीपसे यहां नया ही नया आया हूं। मुझे यहांके हाल-चालसे वाकफियत नहीं है।"

दूसरा-' वाकफियत नहीं है, तो सुनो मैं तुम्हें बताता हूं। हमारे राजाके महामंत्री और सेनापति ब्रह्म-क्षत्र-कुल-केतु श्री चामुण्डरायजी हैं। वही पोदनपुरके लिये यात्रा-संघ निकाल रहे हैं। वे जितने उत्कट रणशूर हैं, उतने ही धर्मात्मा सज्जन हैं।'

पहला-'हां, यह यात्रा-संघ ही उनके धर्मात्मापनेका प्रमाण है!'

दूसरा-' यही क्यों; चामुण्डरायकी आस्तिकता, उनकी दानशीलता, भक्तिवत्सलता पहलेसे ही जगद्विख्यात है। यही कारण है कि जैन संघमें वह 'सम्यक्त्वरत्नाकर' 'शौचाभरण'; 'सत्य युधिष्ठिर' और 'कविजन शेखर' नामसे विख्यात हैं।'

पहला-' और लोकमें किन नामोंसे विख्यात हैं?'

' यह नाम क्या लोकके बाहर हैं?' चिढकर कहता हुआ, दूसरा पुरुष नवागन्तुकसे बोला-'भाई, इन्हें धर्मकी बातें अच्छी नहीं लगतीं; यह चामुण्डरायको वीर-शिरोमणि देखनेमें ही मस्त हैं!'

पहला-' सो क्या वह हैं नहीं?'

दूसरा-' हैं क्यों नहीं, मैं खुद कहता हूं कि वह 'सुभट-चूडामणि हैं, वीरोंमें वह अपनी इस उपाधिसे ही परिचित हैं। उन्होंने कई एक बड़ी२ लडाइयां लड़ी हैं। खेडगकी लडाईमें विज्जलदेवको हराकर जब वह आये तब उन्हें ' समर-धुरंधर 'के पदसे अलंकृत किया गया और नोलम्ब रण-क्षेत्रकी गोनूरवाली लडाईमें उन्होंने बड़ी बहादुरी दिखाई। तबसे वह 'वीर-मार्तण्ड' के नामसे प्रसिद्ध हैं।'

पहला-' हां-हां, उच्छङ्गिके किलेकी बात भूले ही जाते हो। ओहो! उस किलेकी रक्षामें उन्होंने गजबका रणकौशल दिखाया था। इस विजयोपलक्षमें वह 'रण-रङ्ग-सिंह' कहलाये थे!'

दूसरा-'किस्सा कोता भाई, उनके विरुद ही उनकी अनुपम वीरताको प्रकट करनेके लिए पर्याप्त हैं। उपरोक्तके अतिरिक्त ' वैरी-कुल कालदण्ड,' ' भुज-विक्रम,' ' समर-परशुराम,' 'प्रति-

यक्ष राक्षस,' 'भटमारि' इत्यादि नामोंसे भी इनका यशगान हुआ है। किन्तु इस महोत्कृष्ट वीर-वृत्तिको रखने हुये भी वह जन्मसे ही धर्मपरायण और भावुक महापुरुष हैं।'

नवागन्तुक—'धन्य है आपका राष्ट्र; जिसके भाग्य-विधाता ऐसे प्रतापी पुरुष हैं! शायद यह बाजोंकी आवाज और जय-जयकारका निनाद यात्रासंघका ही है।'

दूसरा—'हां भाई, यात्रासंघका ही महोत्सव है। चलो, अपन भी देख आयें और आचार्यमहाराजका धर्मोपदेश भी सुन आयें।'

उषा प्रकाश-वधूका घूंघट अभी अच्छीतरह उघाड़ भी न पाई थी कि श्री चामुण्डरायजीके यात्रासंघमें श्रवणबेलगोलसे अगाड़ी चलनेकी तैयारी होने लगीं। सहसा बड़ी जोरकी आवाज हुई, जिसे सुनकर लोग हक्के-बक्केसे रह गये। किसीकी भी समझमें न आया, यह शब्द किसका है? वज्रपात है अथवा समराङ्गणमें तोपका गोला छूटा है! सब ही चलना भूल गये और लगे इस 'आवाजके निर्णय' के लिये अपनी २ अनुमान-शक्तिको पैनी करने! श्री चामुण्डरायजीने अपने डेरेसे निकलकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्हें गुरुवर्य्य श्री नेमिचन्द्राचार्य महाराजके शिलासनके पास एक दिव्य प्रकाश दिखाई पड़ा। वह झटपट उधरको बढ़ गये। उन्होंने देखा, आचार्य महाराज ध्यानलीन हैं। और उनकी वंदना एक भव्याकृति और सौम्यप्रकृतिकी देवी कर रही है। चामुण्डरायने भी गुरुमहाराजको नमस्कार किया और वह उनके मौनभंगकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें अधिक बाट न जोहना

पड़ी। आचार्यमहाराज समाधिसे जागकर बोले—'शासनदेवता! तुम्हारा स्वागत है! जिस धर्मभावसे प्रेरित होकर तुमने यहां आनेका कष्ट उठाया है, उसकी पूर्ति अवश्य होगी।'

देवी इन वचनोंको सुनकर प्रसन्न हुई और आचार्य महाराजको नमस्कार करके अन्तर्हित होगई। चामुण्डरायने भी उनका अभिवादन किया और वह अपने डेरेकी ओर लौट चले।

संघके लोगोंने भी वह प्रकाश देखा—वे भी अपना कौतूहल मिटानेके लिए उस ओर चल पड़े। किन्तु अगाड़ी बढ़नेसे उन्हें मालूम हुआ, यह उनका भ्रम था—प्रकाश, अरुण-सूर्यका प्रकाश था। सब आँखें मलते हुये लौट आये!

चामुण्डरायकी प्रतीक्षामें उनकी माता डेरेके द्वारपर ही खड़ीं थीं। चामुण्डरायने पहुंचते ही उनको प्रणाम किया। माताने आशीश देकर कहा-"बेटा! आज सुबह ही सुबह तू कहाँ हो आया?"

चामुण्ड०—"माताजी! मैं श्रीगुरुके चरणोंकी वन्दना करने गया था।"

माता०—"धन्य हो बेटा! पर एक बात तो सुनो; आज मैंने एक बड़ा विचित्र स्वप्न देखा। स्वयं शासनवर्द्धक पद्मावती देवीने मुझसे कहा कि 'पोदनपुरकी यात्राकी बात भूल जाओ, स्वयं इस पर्वतकी उन्नत शिखरपर भगवान बाहुबलिकी एक उन्नत प्रतिमा छुपी हुई है, उसका उद्धार करके धर्मका उद्योत करो।' बेटा! तबसे मैं बड़े असमंजसमें पड़ी हूं—यह क्या बात है?"

चामुण्ड०—"माताजी! शासनदेवताका परामर्श आदरके योग्य है। आचार्य महाराज भी इस बातमें सहमत हैं।"

माता०—" यह कैसे ? उन्होंने कैसे जाना ? "

चामुण्ड०—शासनदेवताने अपने आशयको उनपर भी प्रगट कर दिया है।"

माता०—" तो अब क्या यात्रा होगी ही नहीं ? "

चामुण्ड०—" होगी क्यों नहीं ? यात्रा क्या, स्वयं एक तीर्थका निर्माण होगा ! तबतक आप सबलोग यहां सानन्द ज्ञान-ध्यानमें निरत रहिये।"

माताने खुशीके आंसू बहाये और चामुण्डरायका माथा चूम लिया।

एक दिन श्री चामुण्डरायजीकी माताने देखा, श्री विन्ध्य-गिरिकी पहाड़ीपर विशालकाय खड्गासन मूर्तिमान् भगवान बाहु-बलि खड़े मुस्करा रहे हैं ! उन्हें अपनी आँखोंपर विश्वास न हुआ—वह सोचने लगीं कि "यह कारीगरोंकी बनाई हुई मूर्ति है अथवा स्वयं बाहुबलि महाराज ध्यानलीन हैं ! हो न हो, यह मूर्ति ही है ! कारीगरोंके चातुर्य्यने मुझे भ्रममें डाल दिया है। चलूं, चामुण्डसे सब हाल पूछूं—अरे, वह तो यहीं आगया ! "

चामुण्ड०—" माताजी प्रणाम। "

माता०—" चिरंजीव रहो बेटा ! तुम्हारी मूर्तिने तो मुझे भ्रममें डाल दिया—बड़ी अच्छी बनी है। "

चामुण्ड०—" हाँ, माँ, कारीगरोंने इसके बनानेमें कमाल कर दिया है। संसारमें यह मूर्ति अनूठी और सबसे ऊँची है। "

माता०—" हाँ, करीब बीस गजकी ऊँचाई है। बेटा,

अब मूर्तिकी प्रतिष्ठा और पूजाका शीघ्र प्रबंध कर लो ! ”

चामुण्ड०—“माताजी ! इसकी आप फिकर न करें । सब प्रबंध हो चुका है और इसी सप्ताहमें भगवान बाहुबलिकी प्रतिष्ठा और साभिषेक पूजन समाप्त हो जायगी । ”

माता०—“ धन्य हो, बेटा ! तुम्हारा यश त्रिलोकव्याप्त हो और धर्मका नाम सदा अमर रहे । ”

चामुण्ड०—“माता, यह आपका अनुग्रह और पुण्य-प्रताप है!”

× × ×

तब अर्थात् अबसे करीब एक हजार वर्ष पहले श्री चामुण्डरायजी द्वारा निर्माण की गई यह विशालकाय मूर्ति आज भी संसारकी आश्चर्यकारी वस्तुओंमेंसे एक है और प्रतिवर्ष देश-विदेशोंके यात्री उसके दर्शन करनेके लिए श्रवणबेलगोलको आते हैं । चामुण्डरायका नाम इस मूर्तिके द्वारा सदाके लिए अमर है ! भगवन् ! घर घर ऐसे चामुण्डराय होकर धर्म और देशका मस्तक ऊँचा करें ।

(९)

चारित्रवीर मारसिंह ।

यात्राका पसीना अभी जिसके मुखपरसे सूखा नहीं था, उस सामन्तने आकर धर्म-महाराजाधिराज, गंगकुल-दिवाकर, नृप मारसिंहसे निवेदन किया:—

"अशरण-शरण ! मुझ अभागेको आज बड़े बुरे समाचार सुनाने हैं। क्षमा कीजिये प्रभो ! मैं आपकी प्रसन्नतामें बाधक बन रहा हूं।"

मारसिंह-"प्रिय रणशूर ! घबड़ानेकी कोई बात नहीं है। संसारका रूप ही ऐसा विचित्र हैं-सुख दुःख दिनरातकी तरह मनुष्यके पीछे लगे हुये हैं। तुम निडर होकर अपनी बात कहो।"

सामन्त-"महाराजाधिराज ! जिन राठौर राजाओंका नाम सुनकर लोग थर्रा जाते थे-जिनकी उन्नतिका सूर्य कलतक पराकाष्ठा शिखरपर चमक रहा था, वही आज न कहींके होगये हैं।"

मारसिंह-" ओफ ! कितने बुरे समाचार हैं " दरबारियोंने दुहराया " महाराज ! सचमुच बड़े बुरे समाचार हैं।" सामन्तने कहा:-"नरेश ! इसमें शक नहीं राष्ट्रकूटोंके सर्वनाशके समाचार महा भयानक हैं। किन्तु अब सम्राट् इन्द्रराज चतुर्थकी आशालता केवल आपके आश्रयपर झूल रही है। प्रभो, उद्धार ! राष्ट्रकूटोंका उद्धार नहीं, धर्मोद्योतका भार श्रीमानके कुशल हाथोंमें है।"

मारसिंह-"तुम निशङ्क रहो, वत्स ! मैं सम्राट् इन्द्रराजके लिये प्राणपणसे तैयार हूं। अहा ! उनसा धर्मवीर और उनकी सेवा करनेका अवसर ! मैं अभी उन्हें यहां बुलवाये लेता हूं। परन्तु

सामन्त ! राष्ट्रकूट और सोलंकियोंके संग्रामका हाल तो जरा कहो।

सामन्त—"महाराजाधिराज ! हाल क्या कहूं ? जब भाग्य-चक्र ही राष्ट्रकूटोंके प्रतिकूल था, तब उनका रणकौशल तैलप सोलंकीके सामने क्या पेश जाता ? फल यह है कि आज 'राष्ट्र-कूटोंका 'पालिध्वज' मान्यखेटके किलेपर नहीं फहरा रहा है। उसपर सोलंकियोंका शानदार झण्डा हवासे अठखेलियां कर रहा है और राष्ट्रकूटोंके राजसिंहासनपर तैलप अड्डा जमाये हुये हैं। इन असह्य बातोंको देखकर रक्त उबलने लगता है--किन्तु भाग्य ! प्रारब्ध ! दिनोंका फेर ! आज यह दुधारा बेकार है !"

मारसिंह—"विधिकी मेख—दिनोंके फेरको पलट देना क्षत्रिय-वीरोंके बायें हाथका खेल है। क्षत्रियशिरोमणि तीर्थङ्करों और अन्य महापुरुषोंने इस भाग्यको क्षणमात्रमें चुटकीसे चूर-चूर कर दिया। सामन्त! हम उन्हीं महापुरुषोंकी सन्तान हैं। जिसतरह मैंने राष्ट्रकूट महाराजा कृष्ण तृतीयके इशारे मात्रसे सारे उत्तर भारतके राजाओंको नत-मस्तक बना दिया, उनके शत्रु अल्लाहका घमंड चूर कर दिया, किरातोंको भगा छोड़ा और मान्यखेटमें राष्ट्रकूट सैन्यकी रक्षा की; उसी तरह आज भी सम्राट् इन्द्रराजको मैं राज-सिंहासन पर बैठाकर ही कल लूंगा। तुम निश्चिन्त रहो !"

सामन्त—'राजन् ! आपका कल्याण हो !'

राजदरबारियोंने कहा—'धर्म-महाराजाधिराजकी जय हो !'

दिशायें—कह उठीं—'गङ्ग-राष्ट्र जयवंत रहे !'

मान्यखेटके किले पर राष्ट्रकूटोंका 'ओक-केतु' फहराता देखकर लोगोंकी जानमें जान आई। दुनियांके मुखसे गङ्गराज धर्म-महाराजाधिराज मारसिंहके रण-शौर्य्यका बखान होते छोर न आया था। सोलंकियोंकी चार दिनकी चांदनीका अन्त हो गया। राष्ट्रकूटोंकी श्रीलक्ष्मीके भाग्य फिर चमक गये। इन्द्रराज चतुर्थको पुनः राजसिंहासन पर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजा और प्रजाने मिलकर आनन्दोत्सव मनाया।

गंगचूड़ामणि नृप मारसिंह भी ससैन्य इस उत्सवमें विद्यमान थे और उनके साथ सेनापति रण-रंगसिंह चामुण्डराय भी थे। इन्द्रराजने इनका बड़ा आदर किया और बार २ अनुग्रह करनेपर उनको विदा किया। चलते समय इन्द्रराज बोले—"धर्म-महाराजाधिराज! राष्ट्रकूटवंश आपका चिरऋणी है—दयाकर अपना अनुग्रह बनाये रखिये।"

मारसिंहने उत्तर दिया—"सम्राट्! मैंने मात्र अपना कर्तव्य पालन किया है। तिसपर गंगराजवंश तो सदा ही सम्यक्त्व-गुण-वर्द्धक राष्ट्रकूटवंशकी कीर्तिरक्षाके लिये तत्पर है।"

गङ्गराज मैसूरको चले गये और इन्द्रराज राजमहलको लौट आये। हरिणी जैसी आँखोंवाले एक लजीले पर प्रफुल्ल मुखने उनका स्वागत किया। इन्द्रराजने उस सुन्दर मुखको अपने विशाल वक्षस्थलमें छिपा लिया। उन्होंने सुना—"प्रिय, इस सौभाग्यशाली अवसरपर चलो, जिनेन्द्र भगवानका अर्चन-पूजन करें।" राज-दम्पति जिन-भवनकी ओर चले गये।

कोंकापुरके उद्यानमें श्री अजितसेनाचार्यका संघ विराजमान था। दूर-दूरके यात्री उसके दर्शन करनेके लिये आते थे। आचार्य महाराजकी विशाल निस्पृहता, उदार चित्त-वृत्ति और अगाध पाण्डित्यको देखकर वे अपना जीवन सफल हुआ समझते थे। श्री अजितसेनाचार्य शिष्यमण्डल सहित विराज रहे थे कि एक राज-मुकुटसे अलंकृत, कृश-शरीर परन्तु सप्रतिभ पुरुषने आकर उनको नमस्कार किया और धर्मलाभ पाकर वह उन्नत स्थानपर बैठ गया। संघजन उत्सुकतासे नवागन्तुकका परिचय पानेके लिये आचार्य महाराजकी ओर निहारने लगे। महाराज बोले—"गङ्गराज! यह क्या हाल है?"

मारसिंह—"नाथ! हाल क्या बताऊं? वृद्धावस्थामें शरीरका हाल क्या अच्छा और क्या बुरा? मुनिनाथके अनुग्रहसे कुछ धर्मलाभ करलूं; इस भावसे श्री गुरुकी शरणमें आया हूं।"

आ०—"सम्यक्त्वाभरण नरराज! तुम्हारा विचार अत्यन्त सराहनीय है। तुम्हारे जैसे सुभट और धर्मप्रभावक नर-रत्नसे मुझे यही आशा थी। क्षत्रीकुलकी तो सदासे यह रीति ही चल आई है कि वह राजक्षेत्रमें अपने पुरुषार्थको प्रकट करके आत्म-कल्याणके मार्गमें उतर पडे।"

दर्शकोंने जाना कि यह गङ्गवंशके प्रसिद्ध धर्मप्रभावक और वीर-योद्धा धर्म-महाराजाधिराज मारसिंह हैं और वे बड़े प्रसन्न हुये। गङ्गराजने व्रत-नियमोंको दृढ़तासे पालन करना प्रारंभ कर दिया और आत्मानुभवके मार्गमें उन्नति करते हुए उनका ज्ञान विशेष प्रदीप्त होगया। अंतमें गुरुवर्य्य अजितसेनाचार्यके चरणकमलोंमें

उन्होंने सल्लेखना व्रत लेकर समाधिमरण किया। संघमें वह 'चारित्रवीर' होगये-सब ही उनके आदर्शकी प्रशंसा करने लगे। जैन इतिहासमें उनका नाम सदा-सर्वदाके लिए स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित हो गया।

(६)

जिनधर्म-रत्न गंगराज।

ठ आधी रात थी। संसारके लोग अपने २ घरोंमें पड़े सो रहे थे। दिनभरके थके-मांदे पशु-पक्षी भी सुखकी नींद लेरहे थे। किन्तु ऐसे समयमें भी तीन चार व्यक्ति जाग रहे थे। वे एक विशाल-भवनके एकान्त कमरेमें बैठे हुये थे। उनकी बातोंसे मालूम होता था कि वे कोई गहरी मंत्रणा कर रहे हैं। उनमेंसे एक उन्नत मस्तक, विशाल वक्षस्थल और पुष्ट भुजाओंवाला था। वह प्रतिभाशाली वीर योद्धा जंच रहा था-उसके साथी उसे आदरकी दृष्टिसे देख रहे थे। वह उनका नेता था। एकने उनसे निवेदन किया—"सेनापति, मैं समझता हूं, आपकी स्कीम बिल्कुल ठीक है। हमें अब अन्य किसीसे परामर्श करनेमें समयको नष्ट न करना चाहिये।"

दूसरेने कहा—"बात तो यही ठीक है कि अब तनिक भी विलम्ब किये बिना ही शत्रुके ऊपर दोनों ओरसे धावा बोल देना चाहिये।"

तीसरेने कहा—"शत्रुकी सतर्कताको देखते हुये, उसपर धावा करनेमें देरी करना, सचमुच अपने आप अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना है।"

चौथे वृद्ध महाशय उनसे सहमत न थे। उन्होंने कहा—"वह सब बात ठीक है; किन्तु जब महाराज विष्णुवर्द्धनने स्वयं आनेके समाचार भेजे हैं, तो उनकी प्रतीक्षा कर लेना बुरा नहीं

है। तबतक अपनी स्कीमके अनुसार हमें सेनाको ठीक ठिकाने लगा रखना चाहिये।"

सेनापतिने यह सब बातें बड़े ध्यानसे सुनीं, उन्हें आक्रमणमें विलम्ब करना ठीक न जंचा। वह बोले—' वीर सामन्तगण! बेशक महाराज विष्णुवर्द्धनका आगमन हमारे लिए सोनेमें सुगंधिका काम देगा, किन्तु उनके लिये प्रतीक्षा करना शत्रुबलको जान बूझकर बढ़ाना है। हमें महाराजका इतना डर नहीं, जितना शत्रुको बेरोक अपने देशमें घुसते चले आने देनेका है।....

सेनापतिकी बातको काटकर बीचमें ही तीनों सामन्तोंने कहा—" सामन्ताधिपति! आपका निश्चय बिल्कुल ठीक है-विलम्ब न करके आप हमें शत्रुपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दीजिये।"

सेनापतिने चौथे सामन्तकी ओर देखा—वह खामोश रहे-उन्होंने समझा हमारे निश्चयसे वह भी सहमत हैं। बस, शत्रुको दोनों ओरसे घेरकर आक्रमण करनेका निर्देश सेनापति करनेको तत्पर हुए कि इतनेमें कमरेका एक दर्वाजा खुला! सबकी आंखें उस ओर उठ गईं। सबने देखा, एक रमणी-रत्न द्वार पर खड़ा चमक रहा है। सेनापतिने कहा—' लक्ष्मी! तुम इस समय कहां?' शेष सबने उनका अभिवादन किया। सुन्दरीने भीतर घुसते हुए उत्तर दिया—' क्षमा करें प्राणनाथ! मैं आपकी चिन्तासे व्यथित हुई मुखाकृतिसे ही, इस गहन मंत्रणाकी बातको समझ गई थी-मुझे भी नींद न आई-मैं आपका निश्चय सुन चुकी हूं। इसीलिए एक निवेदन करनेके लिए आई हूं।'

सेनापति—' कहो प्रिये! क्या निवेदन है?"

लक्ष्मी—" निवेदन है, नाथ ! वह कहती हूं, परंतु उससे यह न समझिये कि महाराज विष्णुवर्द्धनके महाप्रचंड दंडनायक और सेनापतिकी सहधर्मिणी भीरु और ईर्षालु है। नहीं आर्यपुत्र ! मुझे अपने देशकी रक्षाका पूरा ध्यान है; किन्तु आप जिस उपायको काममें लेने जारहे हैं, उसे मैं देशरक्षाका घातक-जैनधर्मरत देशवासियोंके लिए भयानक समझती हूं !"

सेनापति—" वह क्यों ?"

लक्ष्मी—" वह क्यों ? जिनधर्म-रत्न हैं आप और फिर भी पूछते हैं क्यों ? विष्णुवर्द्धन अब पहलेके सम्यक्त्व-रत्न विष्णुवर्द्धन नहीं हैं ! शैव गुरुओंके तांत्रिक टोनेमें वह एकटक बहे जारहे हैं ! फिर भला कहिये इस जैनधर्मप्रधान देशमें ऐसे राजाके शासनको दृढ़ बनाना कहांकी बुद्धिमत्ता है ?"

सेनापति—" मैं समझगया तुम्हारी मनोवृत्तिको प्रिये ! तुम इसका जरा भी भय मत करो। जबतक विष्णुवर्द्धनका सेनापति मैं-गङ्गराज हूं, तबतक एक नहीं हजार तंत्रवादी आयें, मेरे साधर्मी भाइयोंका बाल बांका नहीं कर सक्के ! महाराज विष्णुवर्द्धन मेरे विक्रम और शौर्यके कायल हैं। प्रिये ! निश्चिन्त रहो, जिनधर्मकी प्रभावनाका सूर्य गङ्गराजके रहते २ इस देशमें कभी अस्त नहीं होसक्ता ! "

लक्ष्मी—" यदि यह बात है प्रिय ! और आपको यह विश्वास है, तो मुझे कुछ नहीं कहना। शासनदेवता आपका कल्याण करें।"

सामन्तोंने 'तथास्तु' कहकर ' जिनधर्म-रत्न ' का जयघोष किया। कमरेके कोने २ से भी 'जिनधर्म-रत्न' का जयकार हुआ।

बाहर हवामें भी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी 'जिनधर्मरत्नकी जय !'

तालकडके रणक्षेत्रमें सेनापति गङ्गराजकी शानदार विजय हुई। शत्रुदल उनकी अल्प सेनासे कहीं बड़ा-चढ़ा था और उसको देखते हुये किसीको आशा न थी कि सेनापतिके हाथ खेत रहेगा। सच बात तो यह थी कि शत्रुको जिस बातका स्वप्नमें गुमान नहीं था और जिसकी ओरसे वह बेखबर था वह अनहोनी बात होगई। सेनापतिके सामन्तोंने शत्रुदलके पीछेसे भी आक्रमण कर दिया ! समरांङ्गणके इस कौशलको देखकर शत्रु-सैन्य कुछ भी न समझ सका। आगे और पीछे दोनों ओरकी मारसे उसके छक्के छूट गये। वह भाग खड़ा हुआ ! गङ्गराजने होयसाल राजवंशका राष्ट्रीय झंडा ऊंचे आकाशमें फहरा दिया।

सारी सेना विजयोल्लासमें फूली हुई राजधानीकी ओर लौट चली। हाँ; उसका वह आवश्यक भाग जो समर-सीमापर डटा रह गया, उसके भाग्यपर खीजने लगा।' उसे सम्राट् द्वारा स्वागत न पानेका मलाल था; परन्तु विजयी वीरकी तरह जब वह भागते हुए शत्रुका स्मरण करता तो छाती तानकर मोर्चेपर टहलने लगता।

सेनापति गङ्गराजकी अध्यक्षतामें होयसाल सेना बढ़ने लगी। किन्तु यह क्या ? उसके सम्मुख यह किसकी सेना बढ़ आई ? क्या शत्रुने उनको चकमा देकर आ घेरा ? सेना रोक दी गई ! सैनिक अपने अस्त्रको संभालने लगे। उधर सेनापतिकी आज्ञासे दो गुप्तचर अगाड़ी बढ़ गये।

बातकी बातमें गुप्तचर लौट आये। उन्होंने कहा—'अरि-सैन्य

नहीं; स्वयं महाराज विष्णुवर्द्धन दलबल सहित चले आरहे हैं।'
यह शुभ समाचार सारी सेनामें विद्युत्वेगकी तरह फैल गये। सेनाने
हर्षोन्मादमें 'महाराज विष्णुवर्द्धनकी जय !'–'महा-सामन्ताधिपति
गङ्गराजकी जय' से आकाश गुंजा दिया।

देखते ही देखते दोनों सेनाओंका मिलाप होगया–योद्धागण
एक दूसरेसे गले मिले ! राजा विष्णुवर्द्धनने सेनापति गङ्गराजको
छातीसे लगाकर इस अपूर्व विजयपर उन्हें बधाई दी। महाराजने
विजयोपलक्षमें 'गोविन्दवाड़ी' नामक ग्राम भी उनको भेंट कर
दिया। राजाज्ञाके अनुसार अन्य योद्धाओंका भी समुचित आदर-
सत्कार हुआ ! चारों ओर आनन्द ही आनन्द छागया।

लक्ष्मीदेवी पुष्पमाल लिये द्वारपर खड़ीं थीं। उन्हें वहाँ
खड़े २ बहुत देर होगई; परन्तु गङ्गराज तो भी न आये। पति-
परायण देवीका हृदय छटपटाने लगा ! वह जरा आहट पाता कि
सिंहद्वारकी ओर नेत्रोंको दौड़ा देता ! पर गङ्गराजको न पाकर
तिल मिलाने लगता ! किन्तु तपस्याका फल मीठा होता है–संतोष
अपना फल लाता है–समय पाकर तरुवर फलते हैं ! लक्ष्मीदेवीका
अधीर मन संतोषपूर्वक अपने प्रियतमके शुभागमनकी बाट जोहता
रहा;–वह निराश भला क्यों होता ? गङ्गराज आये। लक्ष्मीदेवीने
प्रफुल्ल होकर उनके गलेमें फूलोंका हार डाल दिया। प्रेमी पतिने
अपनी प्यारीके धड़कते हुये दिलको अपने विजयी-वक्षस्थलमें छुपा
लिया। चकवी चहक उठी–कुमुदिनी खिल गई ! क्षणभरके लिये
माधुरी बिखर गई।

लक्ष्मीने कहा—'आर्यपुत्र, हार्दिक बधाई देनेसे मैं रुक नहीं सकी; पर अभी आपकी विजय अधूरी है। इसीलिये अभी नहीं कहती 'हार्दिक बधाई।'

गङ्गराज—'खूब, मेरी विजय अधूरी! कौन कहता है?'

लक्ष्मी—'कहेगा कौन? मैं कहती हूं।'

गंगराज—'ओहो, आपका बड़ा साहस! अच्छा सुनाओ, भला क्यों?'

लक्ष्मी—'जिनधर्म-रत्न! आप पूछते हैं क्यों? 'जबतक विष्णुवर्द्धन महाराजके दिलको एकबार फिर आप जैनधर्मकी ओर आकृष्ट न कर दें, तबतक आपकी जीत अधूरी नहीं तो क्या पूरी है?'

गंगराज—'अच्छा, यह बात है! तो कल ही लो! जिन-मंदिरमें विजयको मूर्तिमान् खड़ी देखना! वहां आनन्द ही आनन्द बरसेगा।'

पतिके मुखसे यह सुनकर लक्ष्मीने कहा—'तो मेरी बधाई भी आपको मिल जायगी और गुरुदेवका आशीर्वाद भी दिलवा दूंगी।'

गंगराज हंस पड़े और बोले—'तुम हार गईं लक्ष्मी! यह दोनों चीजें मुझे कभीकी मिल चुकी है। पूछो दिलसे!'

लक्ष्मीदेवीने हंस दिया-गंगराज भी हंसने लगे!

जिनमंदिरमें बड़ा आनन्दोत्सव होरहा था। श्रावक—श्राविकायें जिनेन्द्र भगवानका पूजन-भजन करनेमें व्यस्त थे। मण्डपमें गुरुवर्य श्री शुभचन्द्राचार्यजी विराजमान थे। राज्यके सामन्तगण

और प्रसिद्ध पुरुष उपस्थित थे। गङ्गराज भी आचार्यमहाराजके सन्निकट बैठे हुये थे। बाजे बजने लगे। लोगोंकी आंखें दरवाजेकी ओर दौड़ गईं! गंगराज उठे और उनके साथ अन्य सामन्त भी उठे। आचार्यमहाराजका अभिवादन करके वे द्वारकी ओर बढ़ गये। उन्होंने देखा महाराज विष्णुवर्द्धन हाथीपरसे उतर पड़े हैं। गंगराजने उनका स्वागत किया और सबके साथ वह जिनमंदिरमें आगये। देव और गुरु महाराजकी उन्होंने वन्दना की। आचार्य महाराजने उन्हें धर्मवृद्धि दी और कहा—'राजन्! इस भववनमें भटकते हुये प्राणीके लिए मनुष्य जन्मको पालेना अति कठिन है। तिसपर मनुष्य होकर सुबुद्धि और विवेकको अपना लेना और भी कठिन है। इसलिये इस मनुष्य जन्मको धर्मकार्यों द्वारा सफल बनाना, प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। क्रोध, मान, माया, लोभ मनुष्यको बुरी तरह सताते हैं—इन वैरियोंको जीतना सच्ची विजय है। और इस विजयको दिगन्तव्यापी बनानेके लिये सम्यक्ज्ञानका प्रचार करना श्रेष्ठ है। इस सुअवसरको आप भव्यात्मायें अपने स्थाई धर्मकार्यों द्वारा चिर-स्मरणीय बना देंगे, इसके कहनेकी मुझे जरूरत नहीं है। मेरा आशीर्वाद आपके साथ है!"

गंगराजने खड़े होकर विनयपुर्वक कहा—'श्रीगुरुकी उपदेश-गिरासे हमारा बड़ा लाभ हुआ है। भगवान्के इस महती उपकारको हम नहीं भूल सके। दीनबन्धु! व्रतोंका पालन यह सेवक पहलेसे ही करता है। उनमें मेरी दृढ़ता और आस्था अधिक वृद्धि करे यह आशीष दीजिये। और आज्ञा कीजिये कि मैं गोविन्दवाडी नामक ग्रामको सम्यक्ज्ञान प्रचारके लिये उत्सर्ग करदूं। अपने

प्रभावत्सल महाराजसे भी इस दानको पुष्टि मिलनेकी मुझे आशा है।'

श्रीगुरुने कहा—'तथास्तु।' राजाने सेनापतिकी सराहना करते हुये कहा—"धन्य हो वीर! तुम्हारी निस्पृहता प्रशंसनीय है। राज्यकी ओरसे भी इस ज्ञानदानके लिये अवश्य ही समुचित प्रबन्ध होगा।"

लोगोंने घोषणा की—"जैनधर्मकी जय"—"विष्णुवर्द्धनकी जय"—"गंगराजकी जय!"

आचार्य महाराजकी वंदना करके राजा और प्रजा लौट चले। मार्गमें लक्ष्मीदेवीने अपने पतिदेवसे कहा—"नाथ! अब तुम्हारी पूरी विजय हुई!" गंगराज मुस्करा दिये! लक्ष्मीदेवीने माधुरी वरसादी!

(७)

सम्यक्त्वचूडामणि हुल्ल।

मनोहर वनके एकान्त कुंजोंमें 'जैन आश्रम' स्थित था। बड़े२ आचार्य और उपाध्याय वहांपर अध्ययन अध्यापन और ध्यान-ज्ञानमें निरत रहते थे। दक्षिणभारतकी भावी संतान अधिकांश यहींपर शिक्षित-दीक्षित होती थी। आश्रमवासी ब्रह्मचारीगण यहांसे सर्व विद्याओं और कलाओंमें निपुण होकर अपने२ घरोंको जाते थे। उस दिन इस आश्रममें एक बड़ा उत्सव होरहा था, भोले-भाले ब्रह्मचारीगण प्रफुल्लचित्त हो खेल खेल रहे थे। उनमेंसे एक टोली कूद२कर गा रही थी:-

"स्थिर-जिनशासनोउद्धरणरादियोलारेंने राचमल्ल-भू-
वर-वर-मंत्रि-रायने बलिक्के बुध-स्तुतनप्प विष्णु-भू-
वर-वर-मंत्रि-गङ्गणने मत्ते बलिक्के नृसिंह-देव-भू-
वर-वर-मंत्रि-हुल्लने पेरगिनितुल्लडे पेळलागदे!"

अन्य ब्रह्मचारीगण बड़े कौतूहलसे उनके इस गानेको सुन रहे थे। यह टोली जरा दम लेनेको रुकी कि एक ब्रह्मचारीने पूछा-'भाई, यह गीत गाते तो हो, पर यह तो बताओ इसका मतलब क्या है? किन लोगोंका यशगान है इसमें?'

दूसरा ब्र० बोला-'यह रहे बिलकुल बुद्धू हो-उस दिन गुरुमहाराजने इसका अर्थ समझा भी दिया, तब भी आप कुछ न समझे!'

पहला ब्र०-'किस रोज! मेरे सामने तो इसका अर्थ कभी नहीं हुआ।'

तीसरा ब्र०–हां, हां, भाई ! तुम ठीक कहते हो। उस रोज तुम बीमार थे।

पहला०–हां, यह बात मानी ! पर अब मुझे वह अर्थ बताओ।

तीसरा०–अच्छा सुनो, इस पद्यका अर्थ गुरुजीने यह बतलाया था कि "यदि पूछा जाय कि जैनधर्मके सच्चे पोषक कौन हुवे तो इसका उत्तर यही है कि प्रारंभमें रायमल्ल नरेशके मंत्री राय (चामुण्डराव) हुए, उनके पश्चात् विष्णुनरेशके मंत्री गंगण (गंगराज) हुए और अब नरसिंहदेवके मंत्री हुल्ल हैं।"

पहला०–ठीक, अब मैं समझ गया। धन्यवाद !

दूसरा०–क्यों भाई ! यह नरसिंहदेव ही तो गंगवाड़ीके राजा हैं?

तीसरा०–हां, यही नरशूर गंगवाड़ीके प्रजावत्सल नरेश हैं !

पहला०–सुनते हैं, इन महाराजने एक बड़ी लड़ाई फतह की है।

तीसरा०–हां, हां. उसी विजयके हर्षोपलक्षमें आज मंगलोत्सव मनाया जारहा है।

दूसरा०–क्यों भाई, वह लोग कभी यहां भी आयेंगे ?

पहला०–सुनते तो हैं राजा नरसिंहदेव और सेनापति हुल्ल यहां भी आयेंगे।

तीसरा०–सम्यक्त्वचूडामणि हुल्लसे तो अपन खूब परिचित हैं।

दूसरा०–वे बड़े अच्छे हैं–राजनीतिमें बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सक्ता !

यह बातें हो ही रहीं थीं कि एक ओरसे इन ब्रह्मचारियोंने सुना–"मध्याह्नके सामायिककी वेला होगई है" वे एकान्त कुंजोंमें जाकर ध्यानलीन होगये।

सम्यक्त्वचूड़ामणि हुल्लकी पत्नीने कहा—'प्राणनाथ ! श्रवणवेलगोलकी यात्राका सुअवसर बहुत दिनोंसे प्राप्त नहीं हुआ है। यदि आपको अवकाश हो, आपका अरिमंडल शान्त और राजव्यवस्था सुचारु हो, तो चलो जिननाथकी यात्रा कर आवें।'

हुल्लने उत्तर दिया—'प्रिये ! तुम्हारा यह विचार सराहनीय है। सुना है कि राजा साहब भी यात्रा करनेकी तैयारीमें हैं।'

पत्नी—'अहा ! यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैंने सुना था कि महाराजने अपनी विजयोपलक्षमें श्रवणवेलगोलके निमित्त कुछ भूमिदान किया है।'

हुल्ल—'हां, यह ठीक है और महाराज उसकी समुचित व्यवस्था करनेकी नियतसे ही गोम्मटेश्वरकी वन्दनाके लिये जांयगे।'

पत्नी—'यह आपने अच्छे समाचार सुनाये। अब मेरी अभिलाषाके पूरी होनीमें देरी न लगेगी। अहोभाग्य !'

सम्यक्त्वचूड़ामणि हुल्ल अपनी सहधर्मिणीके धर्मप्रेमको देखकर मन ही मन सराहना करते हुये निद्रादेवीके शान्त उपवनमें विचरण करने लगे।

❦

हाथीपर राजकुलका झंडा फहराता और धौंसा बजता जारहा था। लोगोंने समझा श्री नरसिंहदेव और उनके सेनापति हुल्ल फिर किसी शत्रुका मद-चूर करनेके लिए बढ़े चले जारहे हैं। किंतु जब उन्होंने देखा कि हुल्लके साथ न केवल रनवास ही है; बल्कि अन्य नगर श्रेष्ठिगण और श्रावक श्राविकायें भी हैं तो उन्हें अपनी गल्ती सूझ पड़ी। वे जान गये, राजासाहब जैनतीर्थकी वंदनाके लिये जारहे हैं। इस खबरके फैलते ही गांवका गांव राजसंघको देखनेको उमड़ पड़ा।

विन्ध्यगिरिके निकट पहुंचनेपर राजा और उनके सामंतगण हाथी और घोड़ोंपरसे उतर पड़े। उन्होंने वहींसे श्री गोमटेश्वरको मस्तक नवाया। प्रातःकालकी मनोरम वेलामें उन्होंने जैनतीर्थकी वन्दना करली और वे सब श्री आचार्य नयकीर्ति सिद्धांतदेवका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये उनके मठमें पहुंचे। आचार्यने सबको धर्मवृद्धि दी। राजा नरसिंहदेवने अपनी रण-विजयका हाल उन्हें सुनाया और निवेदन किया—"गुरु महाराज! धर्मके प्रतापसे ही मुझे इष्टका लाभ हुआ है। एतदर्थ मैंने सावणेरु नामक ग्रामको जैन तीर्थके निमित्त अर्पण करनेका निश्चय कर लिया था। उस निश्चयको अब मैं कार्यरूपमें परिणत कर रहा हूं। नाथ! यह तुच्छ भेट स्वीकार कीजिये और इसका जैनतीर्थके लिए समुचित उपयोग कीजिये।"

गुरु महाराज—"राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। जिननाथकी पूजा, अर्चा, वृद्धिकी भावना सदा शुभ फलका संचय कराती है। तुम्हारा यह दान तुम्हारी कीर्तिको जगद्व्यापी बना देगा।'

राजा—"यह दास तो श्री गुरुके अनुग्रहको ही सब कुछ समझता है।"

इधर यह बातें होरहीं थीं, उधर हुल्लकी धर्मात्मा पत्नी उसकी ओर अर्थभरे नेत्रोंसे देख रही थी। हुल्लको अपनी पत्नीका मतलब समझनेमें देर न लगी। वह मुस्कराये और मुस्कराहटने उनकी पत्नीके नेत्रोंमें कृतज्ञताकी ज्योति जगा दी। हुल्ल उठ खड़े हुये। उन्होंने विनयपूर्वक निवेदन किया—"श्री गुरुके प्रसादसे मेरा जीवन आज कृतार्थ होगया। मेरे हर्षका आज ठिकाना नहीं है। स्वामीकी यशवृद्धिसे सेवकको हर्ष होता ही है और वह उनका अनु-

करण करना अहोभाग्य समझता है। प्रजावत्सल, धर्म–धुरन्धर नरसिंहदेवजूकी कीर्ति-गरिमाका बखान करना मेरे लिये कठिन है मैं अपने इस कृतज्ञ हर्ष भावको चिरस्थायी बनानेके लिये प्रतिज्ञा करता हूं कि यहांपर दो भव्य जिनमंदिर निर्माण कराऊँगा और दो छात्र आश्रमोंको स्थापित कराके उनकी सुचारु व्यवस्था करा दूंगा।"

श्री गुरुने सम्यक्त्वचूड़ामणि हुल्लके इस निश्चयकी बड़ी सराहना की, राजाने उनका आभार माना और लोगोंने उनका जयकारा किया।

हुल्लने प्रियाकी ओर देखा वह प्रसन्न थी, वह भी मुस्करा दिये। यात्री लोग गाने लगे:—

"स्थिर-जिन-शासनोद्धरण रादियोळारेने राचमल्ल-भू।
वर-वर-मंत्रि-रायने वळिक्के बुध-स्तुतनप्प विष्णु-भू॥
वर-वर-मंत्रि-गङ्गणने मत्ते वळिक्के नृसिंहदेव-भू।
वर-वर-मंत्रि-हुल्लने पेरङ्गिनि तुळ्ळडे पेल लाग दे॥"

(८)

वीरांगना सावियब्बे।

सावियब्बेके मुंह चम्पा लगी हुई थी। न जाने चम्पा दक्षिण-भारतके इस सामन्त घरानेमें कैसे पहुंच गई थी। किन्तु इसमें शक नहीं, वह सावियब्बे पर अखण्ड प्रेम रखती थी। सावियब्बे हंसती, तो वह भी फूल बरसा देती। सावियब्बे जिनमंदिरमें पूजा करने जाती, वह भी उसके साथ हो लेती। सावियब्बेको अनमनी देखती, तो तो वह भी उदास होजाती। सारांश यह कि चम्पा सावियब्बेको अपना 'सर्वस्व' समझती थी। उसके सुखमें वह अपना सुख और उसके दुःखमें वह अपना दुःख समझती थी।

सावियब्बे भी चम्पापर स्नेह-दृष्टि रखती थी। वह उसे बड़ी प्यारी थी। पर न जाने क्या हुआ, सावियब्बे चम्पापर गुस्सा करने लगी। उसने कहा—" क्या बकती थी छोकरी ? यह तो डरपोंक स्त्रियाँ ही बकतीं हैं, मेरे महलमें यह न होनेका, चली गानेको 'सजन सखारे जांयगे...' कायर ! डरपोंक !! "

चम्पा हंसती रही ! फिर बोली—'मेरी रानी ! नाराज क्यों होगई ? मैं और मेरे देशकी वीरांगनायें भी किसीसे कम नहीं हैं।'

सावियब्बे—'होंगी, पर तू तो बुजदिलीकी बातें कर रहीं थी।'

चम्पा—'बुजदिलीकी न करती तो क्या अपने इठलाते फूलको रणांगणमें कुचलवानेकी बात कहती ?'

सावियब्बे—'चल छोकरी, मेरे सामनेसे हट ! आज तुझे हो क्या गया है ?'

चम्पा—'रानी! मुझे कुछ नहीं हुआ है। आप अपनेको देखें शत्रुदलके उमड़ते हुये बादलों और उसके मारु-गर्जनाने आपको आपे हीमें नहीं रक्खा है।'

सावि०—अरी, नहीं जानती! एक वीरांगनाके लिए यह कौनसी अनोखी बात है?'

चम्पा—'तो मेरे देखनेमें ही कौनसी अनोखी बात है कि आप कितने पानीमें हैं।'

सावियब्बेने हंस दिया, एक विचारकी विद्युत लहर क्षणभरके लिए उसके मुखपर दौड़ गई। दूसरे क्षण उसने कहा—"चम्पा! देख हम लोग मंदिरजीमें जांयगे। पूजनकी सामग्री ठीक रखना।"

चम्पाने कहा—'बहुत अच्छा, मेरी रानी।'

❦

सावियब्बे पराक्रमी और प्रसिद्ध बायिक और उनकी पत्नी जावय्येकी वीर पुत्री थी। जितनी ही वह वीर थी, उतनी ही वह धर्मात्मा थी। उसके समयके लोग कहते हैं कि वह रेवती, देवकी, सीता, अरुन्धती आदि सदृश रूपवती, पतिव्रता और धर्मप्रिया थी। जिनेन्द्र भगवानमें उसकी शासन देवताके सदृश भक्ति थी। उसका विवाह लोकविद्याधर नामक एक पराक्रमी सामंतसे हुआ था। युगल दम्पति सानन्द कालक्षेप करते थे कि अकस्मात् शत्रुदलने उनके देशपर आक्रमण कर दिया। सबको विश्वास होगया कि अब शत्रुके भयानक और सागरकी तरह उमड़ते हुए सैन्यकटकसे सुरक्षित रहना अशक्य है! बस, यही निश्चय हुआ कि शत्रुके नगरतक पहुंचनेके पहले ही आक्रमण कर देना चाहिये। सावियब्बेने जब

यह सुना, तब उसने भी पतिके साथ रणांगणमें चलनेका आग्रह किया। वह बोली—'नाथ !' ऐसे उद्दण्ड शत्रुके अति निकट होते हुये, मैं आपको समर-भूमिमें भेजकर अकेली कैसे रह सक्ती हूं ? जहां आप होंगे, वहां मैं होऊंगी ! मुझे ले चलिये।'

लोक विद्याधर चुपचाप खड़े रहे। सावियव्वेने पतिके असमंजसभावको ताड़ लिया। वह बढ़ी और विद्याधरके गलेमें बाहें डालकर बोली—"प्राणनाथ ! किस बातका संकोच करते हैं ? जहां आप मेरे साथ होंगे, वहां भय किस बातका ? बस, मुझे आप आज्ञा दें।" विद्याधर पत्नीके इस आग्रहको टाल न सका, वह उसके साहस और पराक्रमसे परिचित था और परिचित था नगरपर आनेवाले संकटसे, इसलिये उसने सावियव्वेको साथ चलनेकी अनुमति दे दी। सावियव्वेका मुखकमल खिल गया। विद्याधरने उसकी सौरभ बटोरते हुये कहा—'अच्छा प्यारी ! तो चलो समरभूमिको प्रस्थान करनेके पहले जिनेन्द्र भगवानकी पूजा कर आवें।' सावियव्वेने उत्तर दिया—'अवश्य ही ! मैंने सामग्री वगैरहका सब प्रबन्ध करा लिया है।' पतिपत्नी जिनमंदिरकी ओर चले गये।

❀

बगियुरमें बड़ा घमसान युद्ध हुआ। सामन्त लोक विद्याधर और उसके वीर योद्धाओंने जानपर खेल कर वह कौशल दिखाया कि शत्रु भी दांतों तले उँगली दबा गया। तिसपर वीरांगना सावियव्वेका स्त्री-सैन्य अद्भुत शौर्य और विक्रम दिखा रहा था। किन्तु टिड्डीदलकी तरह उमड़ते हुये शत्रुओंके कटकसे ये मुठीभर सैनिक कबतक भिड़े रहते ! आखिर एक२ करके यह वीर

योद्धा गिरने लगे। जो बच गये वह प्राणोंकी बाजी लगाकर शत्रुके दांत खट्टे करने लगे। साावियब्बेने अपना घोड़ा शत्रुके हाथीकी ओर बढ़ाया और वह शत्रुसैन्यको चीरती हुई उसके सामने जा डटी! विद्याधरने सावियब्बेके अति साहसको देखा, उसने भी अपने घोड़ेको उसी ओर बढ़ाया। किन्तु अभी वह उस तक पहुंचा न था कि शत्रुका पैना भाला, उस कोमलांगीके ऊपर आ गिरा! उसने एकवार बचाया, दूसरा बचाया—परन्तु उसका वश न चला। उसका घोड़ा आहत होगया और उसपर भी घातक वार आ गिरा। एक चीख उसके मुँहसे निकल गई और वह जननी जन्मभूमिकी गोदमें आ गिरी! विद्याधरने चण्डतासे हाथीपर आक्रमण किया। हौधेके रस्से कट गये और शत्रु नीचे आरहा। विद्याधरने शत्रुको बेढव घायल कर दिया। यदि अन्य सैनिक उसे चारोंओरसे न घेर लेते तो वह उसके प्राण लिये विना न मानता। किन्तु अब, अब क्या? वह भी सावियब्बेके पास मातृभूमिकी गोदमें जा लेटा। शत्रुकी सेनामें हर्षनाद हुआ—पर वह स्वयं हर्षित न था। देशवासियोंने इन वीर वीरांगनाकी वीर स्मृतिमें एक वीरगल निर्माण करा दिया, जो आज भी इनके पराक्रमका बखान कर रहा है। धन्य है वीराङ्गना सावियब्बे!

(९)

सती रानी ।
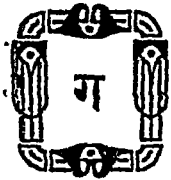
गजनीके बादशाह महमूदने हिन्दुस्तानपर धावा बोल दिया था। उसके अत्याचारोंसे देशमें त्राहि त्राहि मच गई थी। भाग्य उसके साथ था—किसीका कुछ वश न चलता था। देखते ही देखते महमूद गजनवीने पंजाबको जीत लिया और वह गंगा—यमुनाके मनोहर देशमें आ धमका।

उस समय प्राचीन श्रावस्ती नगरी चन्द्रिकापुरीके नामसे प्रसिद्ध थी। जैनियोंका उससे गहरा सम्पर्क था और ११वीं शताब्दि तक उनके उत्कर्षमें श्रावस्ती भी फलती—फूलती रही। किन्तु सबके दिन सदा एकसे नहीं रहते। श्रावस्तीके भाग्यको भी ग्रहण लग गया। महमूद गजनवीके सेनापति सलार मसऊदने श्रावस्ती-पर भी आक्रमण कर दिया।

श्रावस्तीके जैनधर्मानुयायी राजपूत राजा सुहृद्ध्वजने अगाड़ी बढ़कर हाथिली ग्राममें उससे मोर्चा लिया। एक ओर राजपूतसेना 'जय महावीरकी जय'का निनाद करती हुई यवनोंपर भूखे बाघकी तरह टूट रही थी; दूसरी ओर थके मांदे यवन सैनिक जानपर खेल-कर लड़ कट रहे थे। 'अल्ला हो अकबर' के नारोंसे आकाश गूँज गया, बड़ा घोर युद्ध हुआ। दिनभर किसीने मिनटभरके लिये भी दम न लिया। संग्रामभूमि योद्धाओंके रक्तसे सनी हुई, ऐसी मालूम देने लगी कि मानों उसने गहरे लाल रंगकी चादर ओढ़ ली है। उधर सूर्यदेवताको भी पृथ्वीकी इस लाल चादरसे रीस हुई, उनने अपने

मुखको रोषसे इतना तप्त बनाया कि सारा आकाश लाल२ होगया।' तब यह जानना कठिन था कि पृथ्वी और आकाशमें कुछ अन्तर भी है। इस रक्तावरण काल-वेलामें सलार मसऊदको भी करालकालने आ घेरा। राजा सुहृद्ध्वजके तीक्ष्ण बाणसे उसका वक्षस्थल भिद गया। यवनसेनामें भगदड़ मच गई। राजपूतोंने जयजयकार किया।

घूंन्घटकलाको छिटकाती हुई सती सुन्दरीने कहा—'जिज्जीजी! उदास क्यों हो?' महलकी उच्च अटालिकापर खड़ी हुई, प्रौढ़ा स्त्रीने चौंककर पूछा—'कौन? अरी, तू है—आ बहन, आ।'

सती सुन्दरीने जवाब दिया—'जिज्जीजी! मैं तो आगई; पर आप उदास क्यों हैं?'

प्रौढ़ा स्त्री एक असमंजसमें पड़ गई—उसकी आंखोंमें अमोल आंसु झलक आये, उन्हें वह आंखोंमें पी गई और बोली—'कुछ नहीं बहन! यों ही चित्तमें उद्वेगसा उठ रहा है। शाम होने आई पर युद्धके समाचार कुछ भी न मिले।'

प्रौढ़ा स्त्री राजा सुहृद्ध्वजकी रानी थी और सुन्दरी राजाके छोटे भाईकी बहू थी। रानीके भावको वह ताड़ गई और बोली—'जिज्जीजी! संग्राममें ऐसा ही होता है, राजपूतवीर निर्मोह होकर वीरताकी उपासना करते हैं और तब ही वह सफल होते हैं। अपनेको इसमें खेद करनेकी कौनसी बात है? किन्तु देखो तो, वह धूल कैसी उड़ रही है?'

रानी—'अरे हां, कोई घुड़सवार आरहा है।'

सुन्दरी—'हो न हो, वह राजदूत है।'

रानी—'मालूम तो ऐसा ही होता है।'

अभी यह कुछ निश्चय न कर पाई थीं कि घुड़सवार सिंह-द्वारपर आ धमका, उसका मुख खुला और द्वारपालोंने जय-नाद किया। रानियोंके जीमें जी आया। राजदूतने आकर उनका अभिवादन किया और कहा—'श्री जिनेन्द्रका शासन जयवंत रहे। संग्राममें राजाकी विजय हुई है।' रानियोंने प्रसन्न होकर राज-दूतको पुरस्कार देकर विदा किया। हर्षोन्मादमें वे एक दूसरेके गले लिपट गईं। गलबहियां डाले ही रानीने कहा—'यह तो हुआ; किन्तु सूर्यास्त होनेको आया, राजसेनाके पते नहीं, आज सबके भाग्यमें निराहार रहना ही बदा है क्या?'

सुन्दरी बोली—'जिज्जीजी! फिर आप ऐसी बातें करने लगीं। सती स्त्रीके लिए सूर्य महाराजको प्रसन्न कर लेना क्या है?'

यह कहकर सुन्दरीने जिनेन्द्रभगवानका स्मरण किया और प्रतिज्ञा की कि यदि मैंने आजन्म शीलव्रतका पूर्णतः पालन किया है, तो आज सूर्यप्रकाश उस समय तक लुप्त न हो जबतक राज-पुरुष भोजन न कर लें। पुण्यका प्रताप ऐसा ही हुआ! सब लोगोंने सानन्द भोजन कर लिये। जब लोग उठे, तो उन्होंने देखा रातके नौ बज रहे हैं। उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे बाहर आये, उन्होंने सुना, यह सती सुन्दरीके शीलका माहात्म्य था। मूढ़ लोग कहने लगे और आज भी कहते सुने जाते हैं कि सती सुन्दरीके मनोरम रूपको देखकर सूर्यदेव रास्ता चलना भूल गये थे! राजा सुहृद्ध्वजने भी यह सब बातें सुनीं, सती सुन्दरीके प्रति उनके मनमें तरह २ के भाव उठने लगे।

चांदनी रात थी। उजियाली छिटक रही थी। सती सुन्दरी अपने महलकी छतपर अकेली पड़ी सो रही थी। हवाके धीमे २ झोकोंसे उड़कर उसकी अलकें उसके कपोलोंसे अठखेलियां कर रहीं थीं। सहसा किसीकी परछाईंने सुन्दरीकी देहको ढक दिया! उसकी देहपर दिनसे रात होगई। धीरे २ एक पुरुष उसके पलङ्गके पास आकर खड़ा होगया, सतृष्ण नेत्रोंसे वह सुन्दरीकी रूप-सुधाका पान करने लगा! किंतु इस अवस्थामें वह अधिक ठहर न सका, उसने झुककर अपना मुंह सती सुन्दरीके अरुण अधरोंपर रख दिया! सुंदरी हड़बड़ाकर उठ बैठी वह लुटीसी एक ओर खड़ी होगई! उसने देखा, वह मुख उसके प्राणाधिक पतिदेवका न था। तो, यह कौन नर-पिशाच उसके एकान्तवासमें आ कूदा? वह गुस्सेमें लपलपे बेंतकी तरह थर-थर कांपने लगी। कामातुर नर-पामरनें सुन्दरीके शरीरपर हाथ डालते हुये कहा— 'सुन्दरी! नाराज क्यों होती हो? आओ, तुम्हें राजरानी बनाऊंगा।' सुन्दरी ताड़ित नागिनकी तरह बल खाकर दूर जा खड़ी हुई और घृणासे उसने जमीनपर थूक दिया!

उसने देखा यह नर-पिशाच सिवाय उसके जेठजीके और कोई नहीं है! उसके काटो तो खून नहीं रहा। तब भी सतीके हृदयमें अनुकम्पाका विकास होते न रुका। उन्होंने चाहा, जेठजीको उनकी गलती सुझा दूं। अनावश्यक लज्जाको छोड़कर उन्होंने दृढ़-तासे कहा—'यह भूल है, दादाजी! जिज्जीजीका महल पड़ोसमें है।'

कामी पुरुष विवेक पहले ही गंवा बैठता है। सुहृद्ध्वजका भी यही हाल था, उसने सुन्दरीके वचनोंका अर्थ ही नहीं समझा।

वह बोला—'प्यारी! यह भूल नहीं है—मैंने तुम्हें अपने हृदयकी रानी बना लिया है। अब तुम बिल्कुल मत डरो। तुम्हारा छोकरा पति भी अपने प्रेम-पथमें कांटे नहीं विछा सक्ता!'

पिछली बातको सुनते ही सुन्दरी सन्न हो रह गई, हिम्मत करके उसने पूछा—'उनका क्या हुआ?'

सुहृदध्वजने अट्टहास करके कहा—'पगली! उनका—उनका अब क्या करती है? वह अपने रास्ते लगा। आ—आ, अब तू मेरी दुलारी बन!'

सुन्दरीके धीरजका बांध टूट गया—उसने कड़ककर कहा—"खबरदार! नरपिशाच! तू मुझे असहाय जानकर अपमानित करना चाहता है? पर नहीं जानता, सतीके तेजको। वह तुझे और तेरे राज्यको पलभरमें भस्म कर देगा! जा, मेरा यह शाप खाली नहीं जायगा! और मुझे? मुझे सिवाय मेरे पतिदेवके कोई छू नहीं सक्ता, यह देख।"

सुन्दरीने झटसे एक छुरा निकालकर अपनी छातीमें भोंक लिया! 'श्री जिनेन्द्रको नमस्कार'के साथ ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये। नराधम सुहृदध्वज खड़ा पछताता और हाथ मलता ही रहा। किन्तु अब क्या होता, चिड़ियां चुन गईं खेत।

इतिहास कहता है कि सतीका शाप खाली न गया। उक्त घटनासे लगभग चालीस वर्षके अन्तराल कालमें ही सुहृदध्वजके राजवंशका नामनिशान इस धरातलपर न रहा! किन्तु हां, सती सुन्दरीका बखान आज भी गोंडे जिलेके आबाल-वृद्ध-वनिताके मुखपर है। यह शीलधर्मकी महिमाका अपूर्व प्रभाव है। बोलो, शील धर्मकी जय!

कामताप्रसाद जैन।

अनुकरणीय दानी।

वयोवृद्ध सेठ बेचरदास नाथूभाई वढवाण निवासी जो कई वर्षोंसे गाडम कंपनीमें अच्छे स्थानपर नियुक्त हैं व जो एक स्थानकवासी जैन होते हुए भी कई वर्षोंसे दिगम्बर जैनधर्मपर अतीव प्रेम व श्रद्धा रखते हैं, बड़े ही दानी व साहित्यप्रेमी हैं। आप करीब ८–१० वर्षोंसे अपने वेतनमेंसे करीब ४०)–५०) प्रतिमास दानार्थ अलग निकालते हैं व तुर्त ही मनिऑर्डर द्वारा इस द्रव्यको यत्र तत्र भेज देते हैं। जिनमेंसे १०) जीवदया सभा मुम्बई, १०) जीवदया सभा आगरा, ५) 'दिगम्बर जैन' सूरत, ५) अनाथालय वड़नगर और ५) औषधालय वड़नगरको, ये रकम खास२ हैं। आप हमें साहित्य सेवाके लिये जो प्रतिमास पांच पांच रुपये भेजते थे, उनको हम संग्रह करते रहे व आज आपके इस दानसे यह "नव–रत्न" ग्रंथ 'दिगंबर जैन'के २२ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट देते हैं।

हमारे समाजमें धनिकोंकी कमी नहीं है परन्तु सेठ व्हेचरदास जैसे दानी तो विरले ही होंगे, जो प्रतिमास इस प्रकार दान करते रहकर 'तुर्त दान महाकल्याण' इस कहावतको चरित्रार्थ करते हों। आशा है कि अन्य श्रीमान् आपके इस दानका अवश्य अनुकरण करेंगे।

वीर सं० २४५६ }
रक्षाबंधन दिन। } मूलचन्द।